राजकमल मनोविज्ञान माला—१

बचपन के

पहले पांच साल

[जन्म से विद्यालय तक]

लेखक की First Five Years का अनुवाद

लेखक

आर. मैक्डानल्ड लेडाल

अनुवादक

पं॰ अमरनाथ विद्यालंकार

राजकमल प्रकाशन दिल्ली

प्रकाशक
राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
दिल्ली।

मूल्य एक रुपया

मुद्रक
न्यू इण्डिया प्रेस
नई दिल्ली

क्रम

माता पिता से

"वाह, क्या खूब ! एक बिलकुल अपरिचित व्यक्ति हमें यह बतलाने आया है कि हम अपने बच्चों के साथ कैसा सलूक करें। मैं तो लोगों की इस किस्म की बिनमांगी नसीहत को सुनते-सुनते थक गई हूं। मुझे अच्छी तरह मालूम है जब मेरी मां ने मुझे पाला-पोसा था तो इसके लिए उसने कोई किताबें नहीं पढ़ी थीं, बल्कि प्रत्येक मां को कुदरत ने जो मामूली समझ-बूझ दी हुई है उसीका उसने आसरा लिया था।"

हमारी माताएं इसी तरह का जवाब देंगी, जब उन्हें इस पुस्तक को पढ़ने के लिए कहा जायगा।

इसलिए मैं आरम्भ ही में आपको बतला दूं कि आपको क्यों इस किताब को पढ़ने की जरूरत है।

१. आम तौर पर लोग 'कुदरत की दी हुई मामूली समझ-बूझ' का अभिप्राय वही समझते हैं जैसा सब लोग करते चले आये हैं, क्योंकि हर कोई पुरानी परम्परा से खूब वाक़िफ होता है, और बिना सोचे-समझे बड़े-बूढ़ों की राह पर चलते रहना हर किसी को बहुत सहल लगता है।

२. हम बच्चों का सारा भविष्य उनके संजोग या भाग्य के आसरे नहीं छोड़ सकते। हम एक ऐसे जमाने में रह रहे

हैं जहाँ हमारी नसों या ज्ञान-तंतुओं पर इतना अधिक खिंचाव पड़ रहा है जितना हमारे बुजुर्गों की किसी पुश्त को बर्दाश्त नहीं करना पड़ा था। यही कारण है कि आजकल स्नायु-रोगों में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।

३. सभी ओर हमें मनुष्योचित गुणों की कमी दिखाई पड़ रही है। आज की गड़बड़ाई हुई दुनिया को संवारने के लिए हमें सर्वश्रेष्ठ मानव की आवश्यकता है। क्यों न आपके लड़के और लड़कियां इस योग्य बन जायं कि उनकी गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों में की जाय ?

आपकी यह प्रबल अभिलाषा है कि आपके बच्चे अपनी जिन्दगी में आपसे बढ़-चढ़कर कुछ कर दिखाएं। अपनी सारी जिन्दगी पर एकबारगी नजर दौड़ाने के बाद आप अक्सर पछताने लग जाते हैं कि कितना समय यूं ही व्यर्थ खो गया। अपने जीवन में कितनी निराशाओं, विफलताओं और फिक्र-चिन्ताओं से आपको मुकाबला करना पड़ा है। क्या आप यह चाहेंगे कि आपके बच्चे आपके पिछले तजुर्बों से फायदा उठाकर एक नई राह अख्तियार करें, और जहाँ तक मुमकिन हो, उन भूलों और परेशानियों से बच जायं, जिनके कारण आपको पछताना पड़ रहा है।

इस पुस्तक के लेखक को न तो कोई सनक सवार है, और न उसे व्यर्थ किसी किस्म का वहम ही है, जिसके असर में वह यूँ ही मामूली बातों को बड़ा गूढ़ बनाकर किताब

लिखने बैठा हो। इस किताब की बातें बिलकुल सहल और मामूली समझ-बूझ से ताल्लुक रखती हैं, जिन्हें आप भली-भांति समझ सकते हैं।

फिर भी ये बातें असाधारण महत्व की हैं। इस किताब में जिन्दगी को बच्चों के दृष्टिकोण से देखने की कोशिश की गई है—सयाने और बड़े-बूढ़ों की नजरों से नहीं, जैसा कि आम तौर पर अब तक होता चला आया है। इसमें मामूली अक्ल से काम लिया गया है, जो हमें सिखलाती है कि अगर आप अपने बच्चों को प्रसन्न रखेंगे तो वे खुद ही स्वस्थ और भलेमानस बन जायंगे।

—मैकडानल्ड लेडाल

: १ :

शिशु का जन्म—पहली प्रतिक्रिया—सुख अथवा प्रयत्न—खुराक—नींद—दूध छुड़ाना—आदतें डालना—माता का स्वभाव।

डाक्टर की जिन्दगी के वे क्षण कितने संतोष और इत-मीनान के होते हैं जब मानव-जगत् में बच्चा अपने पहले कदम रखता है, और अपने आगमन की सूचना आश्चर्य-भरी पहली चीख द्वारा देते हुए सम्पूर्ण घर को गुँजा देता है; और डाक्टर नर्स के जरिये सीढ़ियों के नीचे खड़े हुए घर वालों, उनके रिश्तेदारों और मित्रों को यह सूचना भेजता है कि "अब सब ठीक है। सब काम भली-भांति सम्पन्न हो गया है।"

हमारे बीच में एक नये शहरी का आगमन हो गया है। दस में से नौ मौके ऐसे ही होते हैं जब नव-जात शिशु बिलकुल ही स्वस्थ और हर तरह से हृष्ट-पुष्ट होता है। उसकी सम्पूर्ण शक्तियां और सामर्थ्य कहीं से क्षीण नहीं होतीं। पर बड़ा होकर यह बालक कैसा बन जायगा ?

इस सवाल का जवाब बड़ी हद तक उसके मां-बाप के बर्ताव और बच्चे के प्रति उनके रुख पर निर्भर है। यह लाजमी बात है कि बच्चा मां-बाप की आशाओं और कितनी

ही प्रकार की चिन्ताओं का केन्द्र है। उस नन्हे-नन्हे नवजात प्राणी को प्यार से निहार-निहार कर वह गद्‌गद्‌ हो जाते हैं, और उनका हृदय एक प्रकार के आत्म-गौरव से भर जाता है। यह प्राणी उन दोनों के अटूट प्यार का फल है। मां ने किस धीरज और संयम से महीनों इन्तजार के गुजारे, और फिर दारुण प्रसव-वेदना सहन की। इस सब पर उसे नाज होना स्वाभाविक है। परन्तु उसे बनाने में सबसे अधिक भाग तो कुदरत ने लिया है—उसकी मदद के बिना यह गुरुतर कार्य कभी सफलता के साथ सम्पन्न नहीं हो सकता था। तो क्या बालक के लालन-पालन और पोषण में भी इसी करुणामयी प्रकृति की सहायता पर ही हमें अधिक निर्भर नहीं रहना चाहिए?

मां-बाप यदि बालक को अपनी सम्पत्ति समझते हों तो यह उनकी बड़ी भूल है। अक्सर मां-बाप ऐसा सोचते हैं कि नये बालक के जन्म के साथ मानो उनकी जंगम सम्पत्ति में एक और वृद्धि हुई है। इस सम्पत्ति पर वे अपना पूरा प्रभुत्व समझते हैं, जिसे वे अपनी इच्छाओं, विचारों और मन की मौज के अनुसार जैसे सांचे में चाहें ढाल सकते हैं, और जिधर मोड़ना चाहें, मोड़ सकते हैं। वस्तुतः मां-बाप इस नये जीवन के 'ट्रस्टी' या संरक्षक-मात्र हैं। उनका यह गम्भीर कर्तव्य है कि इस बात का भली-भांति ख्याल रखें कि बच्चे की अन्दरूनी शक्तियां और सामर्थ्य अधिकाधिक

विकास और वृद्धि पा रही हैं, भले ही यह विकास उनकी वैयक्तिक इच्छाओं और आशाओं के विपरीत ही क्यों न हो। बालक के निजी व्यक्तित्व का पूरी तरह विकास होना बहुत जरूरी है। मां-बाप को यह भी समझ लेना चाहिए कि बालक का उनके प्रति कोई कर्तव्य तब तक नहीं है, जब तक कि वह उसकी निर्बाध वृद्धि और विकास के लिए पूर्ण अवसर प्रदान करने में सहायक न हों।

परिस्थिति का प्रभाव

पहले लोगों में आमतौर पर यही ख्याल पाया जाता था कि बालक बीज-रूप में एक स्वभाव और चरित्र लेकर ही इस दुनिया में आता है। यह चरित्र आरम्भ में अविकसित कली की तरह होता है, बालक ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है उसके गुण और विशेषताएं विकास पाकर अधिकाधिक स्पष्ट होते जाते हैं। परन्तु आज नये मनोविज्ञान ने हमें सिखलाया है कि यह विचार गलत है।

निस्संदेह बालक चित्तवृत्तियों (इन्स्टिक्ट्स) की समग्र सामग्री लेकर इस जगत् में प्रवेश करता है। विश्व के सम्पूर्ण प्राणी कुछ मूल वृत्तियां लिये हुए आते हैं। वंश-परम्परा से कुछ संस्कार भी चले आते हैं। तो भी इस बात का फैसला बालक की *परिस्थिति* करती है कि बालक की कौन-कौनसी वृत्तियां कितनी प्रस्फुटित होंगी और उसके चरित्र-निर्माण में कौन-कौनसी वृत्तियां प्रधान रहेंगी।

परिस्थिति से हमारा अभिप्राय बाहर की उन तमाम अवस्थाओं से है जिनके सम्पर्क में बालक को आना होता है। कुटुम्ब में बालक की स्थिति—अर्थात् बाकी भाई-बहनों में उसका बड़ा, छोटा या मंझोला होना, उसके मां, बाप, संरक्षक और शिक्षक आदि, और उसके पालतू जानवर इत्यादि सभी की गणना उसकी परिस्थिति में है। इसके अतिरिक्त दूर की परिस्थिति, जैसे शहर या गांव, बंगले या झोंपड़े का भी असर होता है, परन्तु समीप की परिस्थिति का असर ज्यादा होता है, जल्दी होता है, और बच्चे की प्रवृत्ति उसका शीघ्र प्रत्युत्तर देती है। दूर की परिस्थिति का प्रभाव भी स्पष्ट होता है।

एक बड़ का पेड़, जिसका बीज कठिन पथरीली जमीन पर जा पड़ा हो, उस बड़ से अवश्य भिन्न प्रकार का होगा जिसका बीज कोमल और उपजाऊ जमीन में बोया गया हो और जिसकी जड़ें धरती में नीचे तक गई हुई हों, जहाँ से वह अपनी खुराक सुगमता से खींच सकता हो। हवाओं का रुख उस पेड़ की ऊंचाई और तने के झुकाव का फैसला करता है। बच्चों के सम्बन्ध में भी इस बात को ध्यान में रखिये कि बच्चे के भीतर छिपी हुई शक्तियां भली-भांति उभरती आवें। इसके लिए यह जरूरी है कि उसे हर वक्त अनुभव होता रहे कि अपनी परिस्थिति में वह सर्वथा सुरक्षित है। आलोचना और प्रताड़ना की बर्फीली हवाएं उसकी कोमल

प्रकृति को शीघ्र ही शुष्क कर देती हैं।

बालक के चरित्र-निर्माण में पहले पांच साल बहुत महत्व के हैं। शैशव-काल के सबसे प्रथम संस्कार उसके नाज़ुक अंग-प्रत्यंगों पर स्थायी प्रभाव छोड़ जाते हैं।

एक लिहाज़ से तो बच्चे की शिक्षा उसके स्कूल जाने से भी पहले के वर्षों में पूरी हो जाती है। यह काल है जब उसके चरित्र की नींव पड़ जाती है, और उसके चाल-ढाल और व्यवहार की शक्लें नियत हो जाती हैं, जो उसकी उम्र-भर के लिए नमूने का काम देती हैं। ये वर्ष शिशु के सर्वोत्तम गुणों के विकास तथा उसके भावों तथा अनुभूतियों या अहसास को प्रस्फुटित करने में सहायक होते हैं, और शिशु के चरित्र का इस तरह से निर्माण करते हैं जिससे उसकी उपस्थिति इस संसार को किसी क़द्र सद्गुणों से समृद्ध और भरपूर बना देती है।

उद्योग का शौक़ और इन्द्रियां

शिशु की मौलिक आवश्यकताएं क्या हैं ? बहुत ही मामूली और सादी-सी। देह के आराम के लिए हरारत, हिफ़ाज़त और ख़ुराक। जन्म से पहले बिना किसी प्रयत्न के उसे ये तीन वस्तुएं उपलब्ध हो रही थीं। परन्तु इस दुनिया में आते ही उसे इनकी प्राप्ति के लिए निरन्तर उद्यम करना पड़ता है।

उद्योग और श्रम जीवन का नियम है। प्रयत्न और उद्योग का रुक जाना जीवन का अन्त है। प्रकृति ने ऐसी युक्ति की हुई

है कि उद्योग आनन्ददायक हो। प्रौढ़ व्यक्तियों का जीवन दो ताकतों के बीच में लटका हुआ-सा होता है—इन्द्रियों द्वारा मिलने वाला आनन्द, और उद्योग द्वारा प्राप्त होने वाला आनन्दोल्लास। इन दोनों को मनोवैज्ञानिक इन्द्रिय-सुख और प्रयत्न-सुख (प्लैयर प्रिन्सिपल और रियैलिटी प्रिन्सिपल) का नाम देते हैं।

जब प्रयत्न थकान उत्पन्न कर देता है और आदमी श्रम से ऊबने लगता है तो वह आत्म-संतोष की तलाश में इन्द्रिय-जन्य सुख और कल्पना के आभास की शरण लेता है।

हमारे नव-जात शिशु को तो सुखों के इस प्रकार बारी-बारी से रूपान्तर का कोई ज्ञान नहीं होता। प्रारम्भ में कुछ हफ़्ते तो उसके जीवन में इन्द्रिय-सुख की ही प्रधानता रहती है। परन्तु उसकी शिक्षा तत्काल प्रारम्भ हो जाती है। अब से पहले तक उसकी परिस्थितियां सदा एक समान रहती थीं और इसलिए वह अपने आपको सर्वथा सुरक्षित समझता रहा था। परन्तु अब अकस्मात् उसकी परिस्थितियां निरन्तर शीघ्रता से बदलती जाती हैं। इसलिए अगर हम चाहते हैं कि उसकी 'भय' की मूल वृत्ति स्थायी रूप धारण न कर जाय तो हर काम ऐसे तरीके से होना चाहिए कि शिशु अपने आपको सर्वथा सुरक्षित समझता रहे।

नव-जात शिशु की स्वाभाविक शान्ति को केवल दो ही बातें भंग कर सकती हैं। एक तो कई दफ़ा उसे ऐसा लगने

लगता है कि उसके नीचे कोई आसरा नहीं रहा, और वह अब गिरा। दूसरे अकस्मात बेतहाशा ऊंची आवाज़ का कानों के परदे पर पड़ना। जो बच्चे बहुधा ज़रा-ज़रा-सी देर में चौंक पड़ते हैं, अथवा घर के मामूली कोलाहल से बेचैन हो उठते हैं, ऐसे ही बालक होते हैं, जिन्हें मां-बाप की बेपरवाही के कारण ये बुरी आदतें पड़ जाती हैं।

तुनक-मिजाज मां शिशु को अपने भीरु और अस्थिर तरीके से हिलाते-डुलाते हुए उसके स्वभाव में भी अपनी तुनक-मिजाजी दाखिल कर देती है। इसी प्रकार अधीर नर्स या दाई निरीह और असहाय शिशु के कपड़े उतारती-पहराती हुई, उसमें भी उसी प्रकार की अधीरता और घबराहट के भाव उत्पन्न कर देती है।

अकस्मात चौंका देने वाला खटका शिशु के समीप न होना चाहिए। परन्तु जिस शिशु की प्रगति स्वाभाविक रीति से भली-भांति हो रही हो, मामूली बातचीत और घर के शोर-शराबे से उसकी नींद कभी उचटती नहीं। घर में लोगों के चलने-फिरने तथा रेडियो की आवाज़ से भी स्वस्थ शिशु की नींद में कोई विघ्न नहीं पड़ सकता।

'चुप, चुप, कहीं बच्चे की नींद न उचट जाय!' इसकी कभी ज़रूरत ही नहीं पड़ती, जब तक हम बच्चे को कच्ची नींद सोने की बुरी लत नहीं डाल देते। यह बुरी लत क्यों पड़ जाती है ? बच्चे को बार-बार उठाना, रह-रहकर उसकी

खबर-पूछ करना, उसके सम्बन्ध में असाधारण चिन्ता प्रदर्शित करते रहना—ये सब कारण बच्चे की नींद को बिगाड़ देते हैं।

शुरू में आदतें डालना

यह बहुत जरूरी है कि बच्चे की आदतें शुरू ही में पक जायं। आदतें और अभ्यास जीवनचर्या को बहुत सुगम कर देते हैं। आदत और अभ्यास का मतलब यह है कि जिन कार्यों को करने के लिए पहले विचार-विवेक के प्रयोग की आवश्यकता हुआ करती थी, वे बार-बार के अभ्यास के बाद अबोध (अनकाँशस) मन की सहायता से बिना किसी प्रयास के आप-से-आप होने लगते हैं। प्रारम्भ से ही आपके शिशु को आप-से-आप सो जाने की आदत पड़ जानी चाहिए—चाहे उसका बिछौना साबुन की एक पेटी पर लगा दिया गया हो। लोरियां अथवा थपकियां देकर सुलाने की आदत डालकर आप व्यर्थ अपने लिए एक मुसीबत मोल ले रहे हैं। स्वयं सो जाने की आदत बच्चे में स्वावलम्बन के भाव को भी कायम रखती है।

खाने, सोने और मल-त्याग करने के कार्य बच्चे के स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त ही महत्वपूर्ण हैं। इसलिए इन कार्यों के सम्बन्ध में बच्चे को आदतें डालने और उन्हें बिगड़ने न देने की भरसक कोशिश पहले दिन से ही होनी चाहिए। आदतें जितनी ठीक-ठीक पक जायंगी उतना ही मां और शिशु दोनों को आराम मिलेगा। परन्तु इस बात का ध्यान रखिये

कि ये आदतें बच्चे की आवश्यकता और उसकी अपनी रुचि के अनुकूल बननी चाहिएं, न कि मां-बाप और अभिभावकों की सहूलियत और पसन्द के लिहाज से।

यह कोशिश करना फिजूल है कि बच्चे को उन किताबों की नसीहतों और उसूलों को सामने रखकर चलाया जाय, जिन किताबों को न उसने अभी पढ़ा है, और न पढ़ सकता है। दूध दिन में तीन मर्तबा दिया जाय अथवा चार मर्तबा, दूध पिलाने में कितना समय खर्च किया जाय, और कितना दूध पिला दिया जाय, ये सारे प्रश्न स्वास्थ्य-विज्ञान की पुस्तकों के सहारे हल करने के नहीं हैं। शिशु के जन्म के फौरन बाद कुछ ही दिन का अनुभव और अभ्यास हमें बच्चे की रुचि और उसकी जरूरतों का अन्दाजा करा देगा। इस विषय में बच्चे की प्रकृति और प्रवृत्ति ही हमारी अधिक सहायता कर सकती है।

क्योंकि शिशु-स्वास्थ्य-विज्ञान की किसी पुस्तक के अनुसार अभी बच्चे को भूख न लगनी चाहिए, इसलिए उसे दूध के लिए बिलखने देना, यहाँ तक कि वह रो-रोकर थक जाय, सर्वथा अनुचित है। जरा प्रयत्न करके देख लो कि कहीं वह भूखा तो नहीं रह गया। यदि ऐसी बात नहीं है, तो उसका बिछौना संवारकर आराम से और हिफाजत के साथ पालने में करवट बदलकर सुला दो, जहाँ से गिरने का भय जरा भी न हो। इससे वह अपने आपको सुरक्षित समझने लगेगा और

उसकी बेचैनी दूर हो जायगी।

शिशु की बाकायदा आदतें बन जायं इस बात का महत्व तो स्पष्ट ही है। परन्तु यह भी न भूलना चाहिए कि तबियत और रुचि में कुछ स्वाभाविक फर्क भी होता है। इसलिए जब तक आपको बिलकुल यकीन न हो जाय कि अमुक बात बच्चे के बिलकुल ही अनुकूल बैठी है, तब तक उस पर बच्चे को नियमित रूप से चलाने के लिए आपका आग्रह करना उचित नहीं है।

माँ का दूध देना

जहाँ तक बन पड़े, शिशु के शारीरिक स्वास्थ्य और मनोवैज्ञानिक उन्नति दोनों की दृष्टि से यह जरूरी है। शिशु के लिए मां के दूध से अच्छी दुनिया में कोई भी खुराक नहीं। दूध पीते समय मां के शरीर के साथ जिस कोमल और स्नेहमय सम्पर्क का आनन्द शिशु को मिलता है, वह उसकी प्रकृति की मृदुलता की माँग को पूरा करता है। शैशव-काल में यदि बच्चे को यह मृदुल सम्पर्क न मिले तो बड़ी आयु में उसे कई प्रकार के मानसिक रोग हो जाते हैं।

मां के स्तनों से दूध खींचने के लिए बच्चे को मुँह से ज्यादा जोर लगाना पड़ता है। बोतल से दूध पीते वक्त उतना जोर नहीं लगाना पड़ता। बच्चे की उन्नति प्रत्येक कार्य में व्यायाम और उसके प्रयास पर निर्भर है। दूध पीते समय मुँह के आस-पास की पेशियों को बार-बार हरकत मिलती है,

और इससे मुँह और होठों की शक्ल सुडौल बन जाती है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि शिशु मां के स्तन को मुँह में नहीं लेता। इसका एक कारण यह हो सकता है कि मां घबराई हुई हो और उसकी मानसिक दशा का असर शिशु पर भी पड़ रहा हो।

वास्तव में यही वह काल है जिसकी महीनों से मां को प्रतीक्षा होती है। उसकी दीर्घ परीक्षा का अब जाकर अन्त हुआ है। अब वह अनुभव करने लगी है कि उसके मातृत्व की योग्यता की परख इस बात से होती है कि वह भली-भाँति शिशु का लालन-पालन कर सके। इसलिए मातृत्व के आरम्भिक दिनों में उसका जरा-जरा-सी बात पर बेचैन हो जाना, घबरा उठना या आशंकित हो उठना और कई बार इसके कारण उसके व्यवहार में बेढंगेपन की झलक दीखना स्वाभाविक है।

परन्तु इस अवसर पर धीरज और भरोसे से काम लेना ही आवश्यक है। न तो ऐसा होना चाहिए कि घबराहट से माँ के हाथ-पैर फूल जायं, और न उसे बच्चे को घबराहट में डालना चाहिए।

यदि शुरू-शुरू में बच्चा मां के स्तन को मुँह में न डाले तो मां को चाहिए जरा सहारा करे। बच्चा स्वयं स्तन माँगेगा और उसे तलाश कर लेगा। पीछे सहारा लगाकर माँ को इस तरह आराम के साथ दूध पिलाने बैठना चाहिए

कि बच्चा भी आराम के साथ दूध पी ले और अपने आपको सर्वथा सुरक्षित समझ सके।

पहले छः या नौ महीनों में कब तक मां बच्चे को दूध पिलाने योग्य रह सकेगी, यह सब मां की मानसिक दशा पर निर्भर है। कई औरतों की प्रकृति शान्त, कोमल और मधुर होती है और वे बच्चों का पालन करने में स्वभाव ही से बहुत निपुण होती हैं। परन्तु यदि किसी का स्वभाव कुदरत की तरफ से 'गाय की तरह कोमल' न भी हो, तो भी उसे शिक्षा और अभ्यास द्वारा ऐसा बनाया जा सकता है।

जो मां यह चाहती हो कि वह बच्चे को स्वयं दूध पिलावे, उसे समझ लेना चाहिए कि सारा दिन उसे बच्चे के अर्पण कर देना पड़ेगा; अर्थात् उसे अपनी जीवनचर्या इसी के मुताबिक बना लेनी होगी। उसे घबराहट पैदा करने वाली बातों से परहेज करना होगा। उसे ऐसे कमरों में बैठना-उठना चाहिए जो हवादार हों। अधिक रात गये तक न जागना चाहिए, चिन्ता और फिक्रों से सर्वथा बचना चाहिए। उसका सारा ध्यान इस समय सब ओर से हटकर इस नवागन्तुक नन्हे प्राणी पर लग जाना चाहिए।

प्रथम अध्याय का सारांश

१. शिशु आपकी सम्पति नहीं है, जिसे आप अपनी इच्छा के अनुसार ठोक-पीटकर मनमाने साँचे में ढाल लेंगे। उसका अपना व्यक्तित्व है, और वह संसार का एक स्वतन्त्र प्राणी है।

२. आपका शिशु अद्वितीय है, वह किसी की नकल नहीं। और उसे ऐसा ही होना चाहिए।

३. शिशु के जन्म-जात संस्कारों को आप बदल नहीं सकते। आपका काम सिर्फ इतना ही है कि आप उसकी शक्तियों के स्वाभाविक विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियां उपस्थित करें।

४. सब काम नियम से करने की आदतें डालना बहुत ही जरूरी है। परन्तु शिशु की दिनचर्या बनाते वक्त इस बात का भी ख्याल रखें कि वह शिशु के आराम और सुविधा तथा उसकी रुचि और आवश्यकता के अनुकूल हो।

५. शिशु की मानसिक उन्नति तथा शरीर की वृद्धि के लिए मां के स्तन से दूध पिलाना बहुत जरूरी है।

६. तुनक-मिजाजी की आदत बच्चे को विरासत में नहीं मिलती, प्रत्युत वह आस-पास वालों के देखा-देखी आ जाती है। तुनक-मिजाज माँ बच्चे के स्वभाव को भी वैसा ही बना देती है।

७. उद्योग और श्रम से प्राणियों को आराम और संतोष उपलब्ध होता है। इन्द्रिय-जन्य सुख से बच्चे ज्यादा संतोष प्राप्त करते हैं। प्रत्येक आदमी सारी उम्र इन दो परस्पर-विरोधी सिद्धान्तों से युद्ध किया करता है।

: २ :

डर और उसकी रोक-थाम—स्वावलम्बन की शिक्षा-खुराक का प्रश्न—शिशु की बोल-चाल।

प्रतिदिन शिशु को नया-से-नया अनुभव प्राप्त होता है। यह बात याद रखने की है कि इन सब अनुभवों का जो असर उसके मन और मस्तिष्क पर पड़ता है वही भावी जीवन में उसके व्यवहार और चाल-ढाल का आधार बनता है।

मान लीजिए, किसी अपरिचित नवागन्तुक ने प्यार से शिशु को थपथपाकर चौंका दिया, और अपने नये प्रकार के शोर और कोलाहल से शिशु को स्तम्भित और हैरान-सा कर दिया। इस सबको वह सहसा समझ नहीं पाता। बस यहीं से अपरिचितों से भय, शंका और संकोच का श्रीगणेश हो गया, जो अब से लगातार उसके स्वभाव का अंग बनकर जीवन-भर उसके साथ चलेगा। इसी प्रकार शिशु को जोर-जोर से ऊपर उछालना उसमें गिर पड़ने का भय उत्पन्न करता है, और बहुत छोटी उम्र में इससे भी परहेज करना चाहिए।

कुछ काल बीत जाने के बाद जब शिशु कुछ बड़ा होता है और उसमें अपने-आप पर भरोसा कुछ ज्यादा पैदा हो जाता है तो वह मामूली भय-प्रद पदार्थों के साथ खिलवाड़ करने और उन पर काबू पाने में कुछ आनन्द अनुभव करते

लगता है। कुदरत की तरफ़ से यह प्रेरणा है जो उसे भय को जीतने के लिए उत्साहित करती है। किसी पदार्थ से अपरिचित होना भय का कारण होता है। शिशु खेल-खेल में उन पदार्थों से परिचित हो जाना चाहता है—ताकि उसका भय मिट जाय। तथापि कम-से-कम पहले बारह महीनों तक तो बाल-गृह में भय-प्रद पदार्थों और भय उत्पन्न करने वाले दूसरे कारणों का प्रवेश न होने देना चाहिए।

बिना समझे-बूझे हर वक्त बच्चे को चूमते-चाटते और पुचकारते रहना भी ठीक नहीं। ऐसा करने से उसमें उद्योग और उद्यम करने का भाव कम हो जाता है, और इन्द्रिय-सुख की प्रवृत्ति बढ़ती है। परन्तु इसका तात्पर्य यह कभी भी नहीं कि मां और शिशु के भीतर एक दूसरे पर अपना प्रेम जताने का जो स्वाभाविक उत्साह और उन्माद है उससे उन दोनों को वंचित रखा जाय। कहने का अभिप्राय केवल यह है कि इस लाड़-प्यार का महत्व तब ही ज्यादा बढ़ेगा जब कि इसका प्रयोग पूरे संयम के साथ किया जाय; और जो कोई भी नवागन्तुक हो उसे बालक पर जैसे-तैसे अपना प्यार जताने का अवसर न दिया जाय।

चाहे किसी गुदगुदे खिलौने का कोमल स्पर्श हो, अथवा किसी चमकदार छड़कने का कर्कश शोर, ऐसे हर प्रकार के नये और विचित्र अनुभव से शिशु का धीरे-धीरे परिचय कराना चाहिए। ऐसा न हो कि शिशु का ध्यान उनकी ओर बरबस

आकर्षित हो; और वह चौंक उठे।

निप्पल चुसाना और दूध छुड़ाना

प्रारम्भिक शिक्षा का उद्देश्य यह है कि बच्चे की वृत्तियों को धीरे-धीरे इन्द्रिय-सुख-लिप्सा (प्लैयर प्रिंसिपल) के मार्ग से हटाकर प्रयत्न-सुख (रियैलिटी प्रिंसिपल) के मार्ग पर लाया जाय और उसे ज़िन्दगी की ठोस वास्तविकता का अनुभव करने का अभ्यास डाला जाय। इसलिए मनोविज्ञान की दृष्टि से चूसने की निप्पल का इस्तेमाल ठीक नहीं है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी इसका चूसते रहना बच्चे के लिए ठीक नहीं है। निप्पल चूसने की इच्छा व्यर्थ के इन्द्रिय-सुख की लालसा का चिह्न है। हर वक्त कुछ चबाते रहने का अभ्यास यों भी सामाजिक शिष्टाचार की दृष्टि से बुरा है।

मां का दूध छुड़ाना भी शिशु के जीवन में एक जोखम की घड़ी होती है। इस मौके पर आकर वह ज़िन्दगी की कठोर वास्तविकता और गम्भीरता का पहले-पहल अनुभव करता है। यदि दूध छुड़ाने में होशियारी, सावधानी और ज़रा जुगत से काम न लिया जाय तो बच्चे के मन पर इसका बहुत बुरा प्रभाव रह जाता है। सहसा उसकी दिलशिकनी हो जाती है, जिससे उसके स्वभाव में निराशावृत्ति का बीज बोया जाता है। यह निराशावृत्ति प्रायः सारी उम्र हर काम में उसके दृष्टिकोण पर छाई रहती है।

दूध छुड़ाते वक्त मां और शिशु दोनों को कुछ त्याग

करना होता है। ज़िन्दगी में उन दोनों में परस्पर क्या भाव रहना चाहिए, इसका कुछ परिचय उन्हें इस समय होता है। माँ को अब तक यह अनुभव करके कि शिशु सर्वथा उसी पर निर्भर है, एक प्रकार का आत्म-संतोष और सुख मिलता रहा था। दूध छुड़ाकर उसने उसका किसी हद तक त्याग कर दिया। शिशु को मां के कोमल और हल्की हरारत वाले जिस्म से चिपटकर जो मधुकर शरीर-सुख का अनुभव हो रहा था, वह उसका त्याग कर देता है।

अब से शिशु को शिक्षा और अभ्यास ऐसे तरीके से होने चाहिएं कि मां और शिशु के बीच का अन्तर उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाय, ताकि ज्यों-ज्यों शिशु बड़ा होता जाय मां के साथ उसका सम्बन्ध एक दूसरे की सेवा और सहायता पर आश्रित हो जाय और दोनों में से कोई एक दूसरे को अपने निजी स्वार्थ और सुख के लिए इस्तेमाल न करे।

जहाँ तक सम्भव हो छुटपन से ही शिशु को चम्मच से स्वयं खाने का अभ्यास डाल देना चाहिए। प्रारम्भ में कठिनाई अवश्य होगी—शिशु कई बार सब-कुछ बिगाड़कर रख देगा, और सब उलट-पुलट कर देगा। प्रारम्भ में आप जो कुछ उसके हाथ में देंगे वह उसे खराब कर देगा। परन्तु यह सब इस बात के लिए कोई मजबूत दलील नहीं कि बिगाड़ के भय से उसे न जाने कब तक उस आत्म-सन्तोष से वंचित रखा जाय जो स्वयं उद्योग और प्रयत्न द्वारा नये-नये अनुभव

प्राप्त करके शिशु को मिलता है। शिशु का पैदा किया हुआ बिगाड़ ठीक किया जा सकता है, परन्तु शिशु को प्रयत्न करने से रोक देने अथवा हर बात में टोका-टोकी करने से उसे जब निरुत्साहित कर दिया जाता है और उसके हाथ से चीजें छीनकर उसके उन्नति के मार्ग में जो बाधा डाली जाती है उसका निराकरण और क्षति-पूर्ति असम्भव हो जाती है।

कामयाबी हौसला बढ़ाती है

चम्मच के थाली या रकेबी से बार-बार टकराने की टन-टन एक प्रौढ़ आदमी के लिए बड़ी कर्कश आवाज हो सकती है, और कई बार शिशु से जब फिर-फिर ऐसा होता है तो अक्सर बड़े-बुजुर्ग खीझ उठते हैं। परन्तु अक्सर वे यह भूल जाते हैं कि शिशु के अन्दर यह कर्कश आवाज भी आत्म-विश्वास का ऐसा भाव उत्पन्न कर देती है कि आखिर वह भी अपने आस-पास के वातावरण में कुछ असर पैदा कर सकता है। अपने पालने से खिलौना या गेंद बार-बार नीचे गिरा देना ताकि कोई फिर-फिर उसे उठाकर दे, शिशु के लिए एक रिझाने वाला अभ्यास है। उसमें आत्म-विश्वास भी पैदा होता है। आप इस खेल को अधिक मनोरंजक और अपने लिए आसान बनाने के लिए खिलौने या गेंद को रस्सी में बांध दीजिए। बच्चा रस्सी से फिर उसे अपने पास खींच लिया करेगा, और आप बार-बार की परेशानी से बच जायंगे। फेंकने और फिर रस्सी

से खींचने से मशीन-विद्या का प्रारम्भिक पाठ उसे मिल जायगा।

शिशु को खुद काम करने में जो संतोष और सुख मिलता है उसकी कभी बेकदरी मत कीजिये। इससे उसमें आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है। अपनी अधीरतावश उसके हाथों से काम छुड़ाकर उसके उत्साह को ठण्डा न कर दीजिये। शिशु के प्रथम पांच वर्षों में तो इसका बहुत अधिक ख्याल रखना चाहिए। खास तौर पर नहाना, कपड़े पहनना और खाना इत्यादि कार्य तो जहां तक हो सके शिशु को खुद ही करने चाहिएं। ठीक है, इन कामों को करते हुए वह बहुत देर लगा देगा अथवा काम को बिगाड़कर और लम्बा कर देगा, जो आपकी परेशानी बढ़ाने का कारण होगा। परन्तु, भले ही आप कितनी जल्दी में हों, धीरज के साथ बच्चे की ढील-ढाल को बर्दाश्त कर लीजिए; आपको आगे जाकर इसका अच्छा बदला मिलेगा, क्योंकि आपका बालक स्वावलम्बी बन जायगा, और आप सारी उम्र कई तरह की चिन्ताओं और जिम्मेवारियों से बचे रहेंगे।

हां, जब बच्चा स्वयं कोई काम करता है तो अक्सर उसे सही राह बतलाने के लिए आपकी उपस्थिति की जरूरत हो सकती है। ऐसे वक्त पर बच्चा जब ख्वाहिश करे तो होशियारी के साथ उसकी सहायता करने को सदा उद्यत रहिये। परन्तु यह न भूलिये कि बच्चे के उद्योग में किसी

प्रकार की बाधा पहुँचाना न केवल उसके उत्साह को ठण्डा कर देगा, बल्कि कई दफा आपका ऐसा व्यवहार उसे अधीर बनाकर आपे से बाहर कर देगा। बार-बार ऐसा करने से बच्चे के स्वभाव में चिड़चिड़ापन और कड़वाहट उत्पन्न हो जायगी।

बालक के कामों में दखल न दीजिये

बालक स्वयं किसी काम को करना चाहता है, जैसे खाना या कपड़े पहनना इत्यादि। मगर अज्ञान और अनभ्यासवश वह इसे गलत तरीके से कर रहा होता है और इससे पहले ही कि वह कोशिश कर-करके हार जाय, आप बीच में दखल देते हैं, तो ऐसा करके आप उसकी तरक्की में रुकावट डाल देते हैं। उसका अपनी परिस्थिति पर काबू पाने का उत्साह जाता रहता है, और उसे सहसा ऐसा जंचने लगता है कि वह बहुत ही निर्बल और अशक्त है। यही उस हीन-भाव (इन्फीरियारिटी कॉम्प्लैक्स) का आरम्भ है जिसकी चर्चा अक्सर हम सुना करते हैं।

इसका एक यह भी परिणाम होता है कि बच्चे में गुस्सा बढ़ जाता है। उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। बच्चों के स्वभाव में चिड़चिड़ापन और तुनक-मिजाजी इसी प्रकार की रोक-टोक का परिणाम होते हैं। दस में नौ मौके ऐसे ही होते हैं जब यह रोक-टोक बच्चों के हित, और सुविधा के उद्देश्य से नहीं बल्कि हमारी अपनी सुविधा की दृष्टि से की

जाती है। जहां यह कार्य बच्चे के हित की दृष्टि से किया जाता है वहां भी उसे बिलकुल रोक देने की अपेक्षा हम ऐसा कर सकते हैं कि बच्चे का ध्यान एक कार्य से हटाकर उससे अधिक हितकर काम में लगा दें। ढीठ और नटखट बच्चे वस्तुतः अपनी परिस्थिति का परिणाम होते हैं।

सुनहला उसूल तो यह है कि बालक को किसी ऐसी बात के सम्बन्ध में बिलकुल मजबूर न किया जाय जिसका आखिरी फैसला बच्चे को खुद ही करना आवश्यक है। यथा खाना, पीना, सोना और दूसरे शरीरोपयोगी आवश्यक कार्यों के सम्बन्ध में बालक पर जोर-जबर्दस्ती करना अत्यन्त अनुचित है। ऐसा करने से बच्चों का स्वभाव इतना बिगड़ सकता है कि फिर कभी भी न सुधरे। भोजन में खाने-पीने की चीजों में जोर-जबर्दस्ती करने का परिणाम यह होता है कि खाने की चीजों से उसे यों ही सख्त नफरत हो जाती है। बच्चा क्या खाता है, अथवा क्या नहीं खाता, या बिलकुल भी नहीं खाता-पीता, इस बात को आप बहुत अधिक महत्व देते हैं, अथवा इस सम्बन्ध में बहुत अधिक चिन्तित हैं, ऐसा ख्याल बच्चे के दिल में मत पैदा होने दीजिए।

सयाने आदमी की तरह बच्चे में भी यह जबर्दस्त ख्वाहिश होती है कि उस पर हर किसी की नजर पड़े, और हर वक्त उसकी पूछ-ताछ और मिजाज-पुर्सी होती रहे। जब बालक को यह मालूम हो जाय कि खाना न खाने से सबका ध्यान

उसकी ओर खिंच जाता है तो उसकी खुद-पसन्दी उसकी भूख पर विजय पा लेती है, और जब-जब उसे मौका मिलता है वह ऐसी ही हालत पैदा करने की ताक में रहता है।

इसी तरह रोजमर्रा टट्टी-पेशाब जाने के बारे में भी घबराहट और चिन्ता न प्रकट करनी चाहिए। यदि बालक को बुखार आदि कुछ न हो तो इस बात से मत घबराइये। अगर किसी दिन शौचादि अपने स्वाभाविक वक्त से आगे-पीछे हो जावे तो इसे भी महत्व न दें; मामूली कब्ज से स्वास्थ्य को खास नुक्सान नहीं होता। और एक स्वस्थ बच्चे को यदि ज्यादा कब्ज रहता हो तो उसका कारण यही हो सकता है कि उसके साथ घर वाले बहुत नादानी का व्यवहार करते रहते हैं।

बच्चा शरीर के सब व्यवहार अपनी तबियत और मरज़ी के मुताबिक करना पसन्द करता है। हर समय 'यों करो, यह करो, यहां करो' की रोक-टोक को वह बहुत बुरा मानता है। आपका संकेत-मात्र उसके लिए काफी है—उसके बाद यदि आप बार-बार बहुत जोर न देकर स्वयं अमल करते जायंगे तो आपकी देखा-देखी वह आप-से-आप दैनिक आवश्यक कृत्य समय पर करता जायगा। परन्तु जोर देने से वह जिद्द पकड़ जाता है और कामों में ढील डालने लगता है। इससे न केवल उसका स्वभाव बिगड़ता है, बल्कि उसकी तबियत में जिद्दीपन सवार हो जाता है। जब उस पर आप अपनी मरज़

'ऐसा तुम्हें करना ही होगा' कहकर ठोंसते हैं तो उसकी तबियत 'नहीं करूंगा' कहकर जवाब देने की तरफ झुकती है।

शिशु की बोल-चाल का प्रश्न भी बहुत महत्व का है। एक वक्त में आप बच्चे को एक ही बोली तो सिखा सकते हैं। या तो आप उसे तोतली बोली में ही बोलता रहने दीजिए या शब्दों के शुद्ध उच्चारण करना सिखा लीजिये। बच्चा अपनी तोतली बोली में बहुत से शब्दों को ग़लत बोलता है। उसके बोलने की नकल करके उन शब्दों को बिगाड़कर बोलना और बच्चे के मुंह से भी उन्हें बार-बार वैसा ही सुनना प्यारा और मीठा तो बहुत लगता है, परन्तु ऐसा करना हानिकारक है। भले ही आपका इससे आत्मरंजन हो, परन्तु आपका ऐसा करना बालक के लिए हानिकारक और उसे गड़बड़ा देने वाला सिद्ध होता है। बच्चा तो आपके मुंह से शब्द सुनकर उनका शुद्ध अनुकरण करने का गम्भीर यत्न कर रहा होता है; आप उसके इस प्रयत्न में सहायक न होकर उसके महत्वपूर्ण उद्योग को खिलवाड़ बना लेते हैं। इसलिए बच्चे के काम में सहायक होने के लिए आपको चाहिए कि बच्चे के सामने प्रत्येक शब्द के प्रत्येक अक्षर को अत्यन्त शुद्ध रीति से उच्चारण करें।

तोतली ज़बान की नकल करके मां भले ही अपना लाड़ जता ले, परन्तु इससे बालक को बोलना सीखने में बड़ी ही मुश्किल पेश आती है। बच्चे के सामने "मू मू—जीबी,

गु-गु" आदि निरर्थक आवाजें निकालना भी उसकी वाणी को शुद्ध और सुसंस्कृत बनाने में बाधक सिद्ध होता है।

बच्चे को बोलना सिखाने में भी वही सिद्धान्त काम में लाने चाहिएं जो उसके प्रारम्भिक वर्षों के लिए, जो कि उसकी बनावट का काल है, निश्चित किये गए हैं। बच्चा तरक्की की अगली सीढ़ी पर चढ़ता चला जाय, इसके लिए जो कुछ भी आपसे बन पड़े आपको करना चाहिए। ऐसा न होना चाहिए कि किसी भी बात में बच्चा वहां-का-वहां खड़ा रह जाय।

स्वतन्त्रता और स्वावलम्बन के लिए प्रोत्साहित कीजिये

बच्चे में स्वतन्त्रता और स्वावलम्बन का भाव खूब भर देना चाहिए। इसके लिए जैसा अवसर आपको तब मिलता है जब बच्चा अपने पैरों पर खड़ा होना और चलना सीख रहा होता है, वैसा अवसर आपको फिर कभी भी नहीं मिलेगा। बच्चा बार-बार गिर पड़ता है और बहुत बार अपना मुंह तथा सिर फोड़ लेता है। ये बार-बार की निराशाएं उसकी हिम्मत तोड़ने के लिए काफ़ी होती हैं। परन्तु कुदरत की प्रेरणा बड़ी जबर्दस्त होती है। इस समय मां-बाप को खास बात यह ध्यान में रखनी चाहिए कि कहीं बच्चा जरा-सी बाधा से घबरा तो नहीं जाता और जरूरी खतरे मोल लेने के लिए उद्यत तो रहता है।

यह बहुत ही गलत तरीका है कि बच्चा जरा लड़खड़ाकर

गिरा नहीं कि आपने घबराकर उसे उठा लिया और झाड़-पोंछकर पुचकारना शुरू कर दिया। आमतौर पर बच्चे मामूली रगड़ लग जाने या थोड़ा खून बह निकलने से डरते नहीं। आस-पास के लोग जब तक उनकी चोट देखकर घबराहट प्रकट नहीं करते तब तक बच्चे काफी सख्त चोटें भी बिना एक भी आंसू बहाए बर्दाश्त कर लेते हैं। कई बार तो वह अपने बदन से निकलते हुए खून को अचम्भे के साथ देखने लग जाते हैं। यह अच्छी बात है कि दो-तीन साल का बच्चा स्वयं गिरकर स्वयं ही उठ जाय, और स्वयं ही आयोडीन की शीशी तलाश करके चोट पर दवाई लगा ले। उसका मामूली-सी चोट पर रोते-रोते मां के पास दौड़े आना कुछ अच्छा नहीं।

यह तरीका भी बुरा है कि रोते हुए बच्चे को बहलाने के लिए झूठ-मूठ बेजान पदार्थों को दोष दिया जाय, और बच्चे ने स्वयं क्या भूल की थी इसका परिचय उसे न होने दिया जाय। मेज के पर को मारकर सजा देना, और इस तरह के शब्द कहना 'निकम्मी और गन्दी मेज कहीं की; मेरे बच्चे को मारती है'—इससे बालक पर यह मानसिक प्रभाव पड़ता है कि उसकी परिस्थितियां उसके बहुत ही विपरीत हैं। इसका परिणाम यह होता है कि परिस्थिति पर विजय पाने का उसका हौसला कम हो जाता है।

साथ ही इससे बालक के स्वभाव में यह दोष भी उत्पन्न

हो जाता है जो अक्सर हम लोगों में पाया जाता है, कि हमारी अपनी ही भूलों के नतीजे के तौर पर हम पर जब कोई विपत्ति आती है तो हम अपना दोष स्वीकार करने की बजाय आस-पास के हालात और दूसरे लोगों पर दोष मढ़ने की कोशिश करते हैं।

अन्त में इस बात को फिर दुहराने की जरूरत है कि यह सब स्वभाव बीज-रूप से बचपन के पहले पांच वर्षों में बन जाते हैं। इन वर्षों में मनुष्य के स्वभाव और चाल-ढाल का नक्शा निश्चित हो चुकता है और उसीके अनुसार बड़े होने पर हमारा सब व्यवहार चलता है।

दूसरे अध्याय का सारांश

१. जब बालक कोई नया अनुभव प्राप्त करने लगे तो आपको बहुत सावधान हो जाना चाहिए। इस अवसर पर आसानी से उसके मन में नई वस्तु से भय का संचार हो सकता है जो आगे जीवन में हानिकारक होता है।

२. चूसने की निप्पल या ऐसी ही अन्य वस्तुओं का उपयोग स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है। मानसिक दृष्टि से भी इसका असर यह होता है कि बच्चा वास्तविकता से दूर भागता है।

३. मां का दूध छुड़ाना बच्चे के जीवन की बहुत महत्वपूर्ण घटना है और उसका मानसिक प्रभाव गहरा होता है।

४. बच्चे को हमेशा अपने से धीरे-धीरे दूर होते जाने के लिए उत्साहित कीजिए, और उसे अपना काम स्वयं करना सिखलाइए।

५. अगर आप बालक का अपने साथ सम्बन्ध चिरस्थायी बनाना चाहते हैं तो वह परस्पर-सेवा और सहायता पर आश्रित होना चाहिए। वह प्यार, जिसमें बच्चे पर अधिकार का भाव हो, एक कैद बन जाता है।

६. यदि आपका बालक ढीठ और काबू से बाहर है तो इसमें आपका अथवा घर के किसी और प्रौढ़ व्यक्ति का कसूर है।

७. कब्ज का ख्याल बहुत न कीजिये। बच्चे को हर बात में वक्त की चक्की में ऐसा न पीस डालिए जैसा उसके स्वभाव के अनुकूल न हो।

८. अपनी ही भूलों से सहेड़ी हुई मुसीबतों के लिए बेजान वस्तुओं को दोषी ठहराने की आदत बच्चे को कभी मत डालिए। इससे ज़िन्दगी में उसका एक ग़लत दृष्टिकोण बन जायगा जिसका उसके भावी जीवन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा।

: ३ :

नटखट अंगुलियां—खेलने का वक्त—संकेत की शक्ति—चित्त की मूल वृत्तियां और उनका धीरे-धीरे परिष्कार।

मैंने पिछले अध्याय में बालक को बचपन से ही स्वावलम्बन की आदत डालने की आवश्यकता पर जोर दिया था। पहले पांच वर्षों में उसके जैसे विचार और स्वभाव बन जायंगे वह उम्र-भर के लिए नमूना बने रहेंगे।

इसी कारण से, नई-नई वस्तुओं को देखकर चकित होने और उन वस्तुओं के रहस्य के विषय में कौतूहल और जिज्ञासा की जो स्वाभाविक प्रवृत्ति बालकों में प्रारम्भ से ही होती है उसे दबा देना अत्यन्त अनुचित है। कौतूहल और जिज्ञासा की तह में वस्तुतः बालक का वह निरन्तर प्रयत्न है जो आस-पास की वस्तुओं और अवस्थाओं के साथ अपना यथोचित सम्बन्ध स्थापित करने और उनको अपने काबू में लाने के लिए वह कर रहा होता है। बड़ी उम्र में वैज्ञानिक तत्वान्वेषण और मौलिक विमर्श का यह कौतूहल अग्रदूत है। इसलिए यदि बच्चे में इसे दबा दिया जाय तो बड़े हो जाने पर भी वह लड़कपन की बातें किया करेगा और अपने

स्वभाव और व्यवहार में बाल-बुद्धि का परिचय देगा।

बालक अपनी जिज्ञासा को सन्तुष्ट करने के लिए प्रायः घर के सयाने लोगों को अपने सवालों की भरमार से परेशान कर देता है। वह प्रत्येक वस्तु के साथ ऐसे-ऐसे तजुर्बे करता है जो वयस्क व्यक्तियों को व्यर्थ की तोड़-फोड़ प्रतीत होते हैं। यह इस बात का चिह्न है कि अब आपका बालक बचपन की पहली मंजिल पार करके दूसरी मंजिल में कदम रख रहा है।

बच्चे की चंचल अंगुलियां फर्नीचर के किसी गदेले में सूराख ढूँढ निकालेंगी, और उसके अन्दर भरी हुई रुई खींच-खींच कर बाहर निकालने में आनन्द अनुभव करेंगी; अथवा बालक अपने खिलौनों को पकड़कर टुकड़े-टुकड़े कर देगा, पानी के नल को खुला छोड़ देगा; इस प्रकार एक-से-एक बढ़कर नटखटपन के काम बच्चा करता है। सयाने लोगों के लिए उसके ये काम काफी परेशानी और तकलीफ का कारण बन जाते हैं। परन्तु इसका यह इलाज नहीं है कि आप बच्चे को शरारती और उच्छृङ्खल कहकर दोष देते रहें और उसे बुरा-भला कहकर डांट-डपट करते रहें। इसका इलाज यह है कि बालक को किसी मुनासिब जगह पर ले जायं जहाँ आस-पास कोई कीमती सामान न हो जिसके बिगड़ने का भय हो। वहाँ ऐसा सामान हो जिससे बच्चा कुछ सीखता भी जाय। इसी के साथ आप घर की चीजों जैसे गैस और पानी की नालियों,

बिजली के स्विच, और दियासलाई वगैरा का ठीक-ठीक इस्तेमाल उसे सिखला दें।

चार साल के बच्चे को अपने-आप को हानि पहुँचाए बिना दियासलाई जलाना आना चाहिए। बालक को इस तरह के काम सावधानी और होशियारी के साथ सिखाने पड़ते हैं। प्रारम्भ से ही बालक हस्त-कौशल का अभ्यास करना चाहता है। यह सब उसे इस तरह नहीं आ सकता कि जिस चीज़ को हाथ लगावे वह उसके हाथों से छीन ली जाय। यदि आप उसकी स्वाभाविक इच्छाओं को दबाने का यत्न करेंगे तो वह कभी-न-कभी आप से छिपकर अपने कौतूहल के तकाजे को पूरा करने की ताक में रहेगा। और सम्भव है कि आपके डर और छिपकर काम करने की घबराहट के कारण वह अपने-आपको भारी हानि पहुँचा ले।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि बालक को आग के समीप असुरक्षित दशा में कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए। अच्छा तरीका यह है कि बचपन के प्रारम्भिक दिनों में ही जब बच्चा लुढ़क-लुढ़ककर आग के काफी समीप तक जाता हो, तो उसे जाने देना चाहिए, ताकि वह आपकी उपस्थिति में आग की अरुचिकारक दाहकता का दूर-दूर से ही अनुभव कर ले और बड़ी उम्र में आग के सम्बन्ध में उसका कौतूहल ज्यादा बाकी न रह जाय।

खिलौने उन्नति में सहायक होते हैं

जहां तक सम्भव हो खिलौने मजबूत और सीधे-सादे होने चाहिएं। बहुत छोटी उम्र में चाबी देकर चलने वाले कमानीदार खिलौने बच्चों में कुछ भय और ऐसा कौतूहल उत्पन्न कर देते हैं जिसे समझ सकना उनकी बुद्धि और थोड़े से तजुर्बे से बाहर की बात होती है। इसीलिए ऐसे खिलौनों को जल्दी-जल्दी तोड़कर बालक खुशी अनुभव करते हैं।

पहियों वाले ऐसे खिलौने, जिन्हें बच्चा धागा या रस्सी बांधकर खींचकर चला सके, बहुत अधिक मनोरंजन बढ़ाते हैं, क्योंकि स्वयं चलाते हुए बालक उस खिलौने पर अपना पूरा अधिकार समझता है, और इस कारण अपने-आपको सशक्त समझने लगता है। सस्ते गुदगुदे तथा कोमल बालों वाले खिलौने और पालतू जानवर बच्चे को बहुत ही प्यारे और भले मालूम देते हैं। ये खिलौने उसकी बाल-कल्पनाओं के विकास में सहायक होते हैं, और उसके लिए प्यार और नफरत की भावनाओं का मार्ग खोल देते हैं।

गुड़ियों को बच्चा अपने सुख-दुःख और खेल का फर्जी साथी बनाकर खूब आनन्द उठाता है। अपने मन के विविध बाल-उद्वेगों को वह इन कल्पित साथियों पर प्रकट करके खूब सन्तुष्ट हो जाता है, और कल्पना की इस दुनिया में मस्त रहता है। वह उनसे दिली मुहब्बत करता है, और वर्षों तक उनके प्रति वफ़ादार रहता है। इस प्रकार अपने कल्पित

साथियों के साथ वह समय पर बिछौने पर चला जायगा और अपने-आपको अकेला नहीं समझेगा। अकेलेपन में बच्चे जल्दी ही ऊब जाते हैं, और तंग आकर शरारतें करने पर उतर आते हैं।

अपने खिलौने के पास आने-जाने की बालक को दिन-भर खुली छुट्टी होनी चाहिए। बच्चा किसी एक ही वस्तु पर अधिक देर तक ध्यान नहीं जमाए रख सकता; उसकी तबियत एक चीज से हटकर दूसरी चीज पर भागती है। एक के बाद दूसरी आजमाइशों का मजा वह लेना चाहता है। यह भूल है कि उसे एक वक्त एक खिलौना पकड़ा दिया जाय, और यह आशा की जाय कि वह बहुत देर तक उसीके साथ रीझा रहेगा।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मां-बाप अपनी पसन्द के मुताबिक बहुत अच्छा नया खिलौना बड़े शौक से बच्चे के लिए ले आते हैं, पर बच्चा उससे ऐसा खुश नहीं होता जैसी उन्होंने उम्मीद की होती है। इससे उन्हें निराशा होती है। परन्तु मां-बाप को धैर्य से काम लेना चाहिए। यदि नया खिलौना वस्तुतः बच्चे की मानसिक जरूरत को पूरा करने वाला है तो कभी उसकी बारी भी आ जायगी और बच्चे का ध्यान उसकी ओर अवश्य खिंचेगा।

दिन का सुखपूर्वक बीत जाना

जब बालक अपने खेल की धुन में मस्त हो तो उसे

अकस्मात मनमाने तरीके से उधर से मत हटाइये। आप स्वयं सोचिए, जिस वक्त आप कोई दिलचस्प किताब पढ़ रहे होते हैं और कोई चाहे कि आप अकस्मात पुस्तक बन्द करके अलग रख दें, तो उस वक्त आपको कैसा लगेगा। जब बालक से उसका काम छुड़ाना हो, आप धीरे से उसे सूचना-भर दे दीजिये कि उसके नहाने, खाने या सोने आदि का समय हो गया है और उसे अब अपना काम समेटना चाहिए। यह भी प्रबन्ध कीजिए कि नहाना, खाना या सोना इत्यादि बालक की नजरों में अरुचिकर और आफत के काम न बन जायं, बल्कि उसके लिए सुखदायक हों। ऐसा न हो कि वह महसूस करने लगे कि उसे जबर्दस्ती उसके बिछौने पर ठेल दिया गया है और वह इस इन्तजार में रहे कि कब उसकी मुसीबत का खात्मा हो।

बारह मास की आयु के बाद से बालक को मां-बाप से अलहदा कमरे में सोना चाहिए। यह हमेशा सम्भव नहीं होता, परन्तु यदि छुटपन में ही आदत डाल दी जाय तो वह अकेला रहने में डर अनुभव नहीं करता।

ज्योंही बालक इतना बड़ा हो जाय कि दरख्तों और ऊंचे खम्भों पर चढ़ने लायक हो, तो उसे इन पर चढ़ने और खतरा मोल लेने के लिए उत्साहित करते रहना चाहिए। परन्तु इस बात का आप ख्याल रखिये कि बालक कहीं इतनी चोट न लगवा बैठे कि उसके अन्दर भविष्य के लिए डर बैठ

जाय, और आइन्दा कोशिश करने से ही कतराता रहे ।

ऐसी चेतावनी देना—'देखो, तुम गिर पड़ोगे, और कहीं हाथ-पैर तुड़वा बैठोगे', बालक पर ऐसा असर करता है मानो आप उसे रोक रहे हैं। बालक इस पर फौरन अमल करता है। बालक को साफ और सीधी जबान में निश्चित बात कहनी चाहिए और वह भी ऐसे ढंग से कि जैसे आप हुक्म नहीं, मशवरा दे रहे हैं; जैसे—'देखो ऐसा करना अच्छा है, तुम बुरे लड़के कहलाओगे यदि यह काम न करोगे।'

सीधे सुझाव का तरीका इस्तेमाल कीजिये

आप हमेशा बालक का ऐसा विवरण दीजिये जैसा आप उसे देखना चाहते हैं। बालक आस-पास की दुनिया को और उसमें उसकी अपनी क्या हकीकत है, जानना चाहता है। आस-पास के लोगों से वह अपने बारे में जो विचार सुनता है वही ख्याल अपने सम्बन्ध में दिल में बिठा लेता है। उसे कहो कि 'तुम बहुत नटखट, सरकश और आज्ञा भंग करने वाले हो', तो वह वैसा ही अपने-आपको समझने लगेगा और वैसा ही व्यवहार बार-बार करेगा। उसके विपरीत उसे सराहा जाय—'तुम्हारे जैसे भले लड़के तो कभी ऐसा नहीं किया करते।' यह वाक्य बालक को भला और आज्ञापालक बना देता है।

बालक के मन में बैठे हुए भय के निरुत्साहक विचार प्रायः हमेशा सयाने लोगों के सुझाए हुए होते हैं। 'आशा है कि

तुम अकेले अंधेरे में सोये रहने में डर तो महसूस न करोगे,' देखने को बहुत सीधा-सादा-सा वाक्य है परन्तु इस वाक्य ने बच्चे को जताकर होशियार कर दिया कि अंधकारमय एकान्त में कुछ भय का कारण अवश्य मौजूद रहता है।

भयंकर सपने लेना और सोते-सोते चीख उठना, इस बात का परिचय देते हैं कि बालक भयभीत हो रहा है। 'कहीं वह मां-बाप का लाड़-प्यार खो तो न बैठेगा ?' ये चिन्ह प्रायः उस समय प्रकट होते हैं जब बालक का कोई भाई अथवा बहन जन्म लेता है, और मां-बाप का ध्यान ज्यादातर इस नव-जात शिशु की ओर आकर्षित हो जाता है। नव-जात बालक ने सचमुच पहले बालक का स्थान छीन लिया है; और उसे इस बात का रंज होना स्वाभाविक है। मां-बाप को यही उचित है कि ऐसे समय में एक तो बालक की दिलचस्पी नये बालक में उत्पन्न करें, दूसरे पहले बच्चे को कुछ और समय निकालकर प्यार करें ताकि वह अपने-आपको मां-बाप के लाड़-प्यार से वंचित न समझे।

नव-जात शिशु के प्रति पहले बालक की ईर्ष्या-वृत्ति को भी काबू में रखने का यही सफल उपाय है कि नये बच्चे के जन्म से पहले ही बड़े बालक को उसके जन्म की प्रतीक्षा हो। इस प्रतीक्षा में वह उत्साहपूर्वक नव-जात शिशु का स्वागत करने को तैयार बैठा हो। तब वह जन्म के बाद से ही उसमें दिलचस्पी लेना आरम्भ कर देगा। नव-जात शिशु के आगमन

की सूचना पहले से ही बालक को होनी चाहिए।

इकलौते बच्चे की समस्या

जब घर में एक ही बच्चा हो तो उसके पालन-पोषण की कठिनाइयां बहुत अधिक बढ़ जाती हैं। दो-तीन वर्ष की उमर तक तो बालक अपने-आप ही में मस्त रहता है, और बहुत से साथियों की आवश्यकता अनुभव नहीं करता। परन्तु उसके बाद वह अपने समान वय वाले शिशुओं का साथ चाहता है। घर में बालक अकेला ही हो तो मां-बाप उस पर ज्यादा अधिकार समझते हैं, और उसका लालन-पालन भी विशेष लाड़-प्यार के साथ करते हैं। ऐसे बच्चे का स्वभाव ऐसा बन जाता है कि वह अपनी ही फिक्र में रहता है, और दूसरों में कोई दिलचस्पी लेना नहीं सीखता। दूसरों से लड़ने-झगड़ने, प्यार करने इत्यादि की सब वृत्तियां दबी रहती हैं, क्योंकि उन्हें प्रकट होने के लिए कोई राह नहीं मिली होती। वस्तुओं का आदान-प्रदान, लड़ना-झगड़ना, शोर-गुल करना और चीजों की एक दूसरे से छीना-झपटी इत्यादि बातें बालक की मूल चित्तवृत्तियों (इन्स्टिंक्ट्स) के प्रदर्शन के लिए सुन्दर अवसर प्रदान करती हैं।

शिक्षा का उद्देश्य केवल इतना ही है कि चित्त की मूल वृत्तियों का उदात्तीकरण (सब्लिमेशन) कर दे। इसका तात्पर्य यह है कि इन वृत्तियों में मनुष्य को प्रेरित करने की जो जबर्दस्त शक्ति है, वह बजाय इसके कि मामूली इन्द्रिय-सुखों की तृप्ति

हासिल करने के लिए खर्च होती रहे, उधर से हटकर सामाजिक मानव-हित की साधना के लिए उपयोग में लाई जाने लगे।

मूल चित्तवृत्तियों का इस प्रकार का उदात्तीकरण (सब्लिमेशन) सम्भव नहीं है, यदि प्रारम्भ में ही इन वृत्तियों की प्रेरणा का सर्वथा निरोध (रिप्रेशन) कर दिया जाय। बचपन में जिस चित्तवृत्ति का मार्ग इस रीति से अवरुद्ध कर दिया गया हो, बड़ी उम्र में समय पाकर वह अपनी प्रारम्भिक अपरिपक्वता को लिये हुए फूट पड़ती है, और मनुष्य कई प्रकार के अपराध करने लगता है।

यदि बालक की प्रारम्भिक शिक्षा में सहायक होने के लिए उसके भाई-बहन कोई न हों तो कहीं-न-कहीं से उसके योग्य साथी अवश्य तलाश कर देने चाहिएं, और इसके लिए आधुनिक शिशु-शाला (नर्सरी स्कूल) से अच्छा कोई स्थान नहीं है।

मूल चित्तवृत्तियों का उदात्तीकरण (सब्लिमेशन) का विषय इतना महत्वपूर्ण है और इसे लोग इतना कम समझते हैं कि इस पर कुछ अधिक लिखना ज़रूरी मालूम होता है।

मूल चित्तवृत्तियों की कोई परिभाषा या व्याख्या जाने बग़ैर भी हर कोई इतना तो समझ सकता है कि मनुष्यों में कई प्रकार की स्वाभाविक अन्तःप्रेरणाएँ (इम्पल्सिज़) होती हैं जो निचले दर्जे के पशुओं और मनुष्य में एक समान मिलती-जुलती पाई जाती हैं।

खतरा हो तो हम डर महसूस करते हैं, और हमारी अन्तःप्रेरणाए हमें भागने पर मजबूर करती हैं। जब कोई किसी काम में हमारी राह रोकता है, अथवा हमसे कोई वस्तु छीन लेना चाहता है, तो हमें *क्रोध* आता है, और हमारे अन्दर उससे लड़ने की प्रेरणा होती है। जब हम किसी अद्भुत पदार्थ को देखते हैं तो हममें *कौतूहल* उत्पन्न होता है, और हम उस पदार्थ की नज़दीक से परीक्षा करना चाहते हैं।

ऐसे हर मौके पर हमारी तबियत ज़बर्दस्त तकाज़ा करती है कि हम इस अन्तःप्रेरणा के अनुसार काम करें। यह दूसरी बात है कि बाहर से कोई ताकत हमारा मार्ग रोके हुए हो, और उसके सामने हमारी अन्तःप्रेरणा रुक जाय अथवा सर्वथा कुचली जाय, और इस प्रकार हमारे मानसिक उद्वेग उस वक्त के लिए ठंडे पड़ जायं।

चित्तवृत्तियों का उदात्तीकरण

अगर आपने कोई कुत्ता, बिल्ली अथवा कोई जानवर पाल रखा है तो आप उसके व्यवहार में भी इन अन्तः-प्रेरणाओं की भली-भांति पहचान कर सकते हैं। परन्तु यहां हमारा अभिप्राय यह है कि आप ज़रा अपने बालकों में इन की परीक्षा करें। जैसे-जैसे हम बड़े होते जाते हैं, इन प्रेरणाओं की लगाम ज्यादा अपने काबू में करते जाते हैं और उसे कम ढीला छोड़ते हैं । यदि हम बड़े होकर भली-भांति

इन्हें काबू में न रख सकें तो समाज में अपनी प्रतिष्ठित जगह नहीं बना सकते। परन्तु इनको काबू में करने का अभ्यास हम बचपन में ही करते हैं। धीरे-धीरे इन अन्तःप्रेरणाओं को संयम में लाते-लाते हम उनके उद्देश्य और उनकी दिशा को बदल डालते हैं, यहाँ तक कि ये प्रेरणाएँ हमारे जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी बन जाती हैं।

'भय' अपने प्राकृतिक रूप में कायरता का चिह्न है। पर हम उस पर विजय पा लेते हैं, और हम 'प्राकृतिक शक्तियों से भय' के स्थान पर 'लोकमत के भय' अथवा 'अप्रतिष्ठा के भय' को अवस्थित कर लेते हैं—और इस प्रकार अपने लिए लोकमत का अनुरंजन करने वाले शिष्टाचार का एक आदर्श कायम कर लेते हैं और इस आदर्श से नीचे गिरने से भयभीत होने लगते हैं। इस प्रकार 'भय' की स्वाभाविक मूल चित्तवृत्ति परिष्कृत होकर ऐसे 'भय' में रूपान्तरित हो गई कि जो हमें समाज में आदर का पात्र बना देती है। यही चित्तवृत्ति का उदात्तीकरण है। इसके द्वारा मनुष्य समाज के अनुकूल और उसमें आदरपूर्वक उठने-बैठने और रहने के योग्य बन जाता है। इतना ही नहीं, जैसा हम पहले भी कह आये हैं कि 'कौतूहल वृत्ति' हमें संसार के साथ अपनी अनुकूलता और समानता बिठाने में सहायक होती है, और वैज्ञानिक तत्वान्वेषण की तह में यही उत्कर्षित वृत्ति 'जिज्ञासा' के रूप में काम कर रही होती है।

जीवन में यदि हम अपने व्यक्तित्व की रक्षा करना चाहते हैं तो किसी हद तक 'आक्रमणशीलता' (अग्रेसिवनेस) और 'अहम्मन्यता' (सेल्फ एस्टीम) उसके लिए आवश्यक गुण हैं। आत्म-सम्मान की भावना दफ्तर के एक मामूली क्लर्क के लिए भी उतनी ही आवश्यक है जितनी किसी राष्ट्र के प्रधान-मन्त्री के लिए। इन गुणों का सर्वथा अभाव मनुष्य को सार-हीन बना देता है। लड़ने-भिड़ने और दुश्मन का बहादुरी के साथ मुकाबला करने का उत्साह मनुष्य को निर्बलों की हिमायत करने और सामाजिक बुराइयों का घोर विरोध करने के योग्य बनाता है। परन्तु यदि मूल चित्तवृत्तियों को संयम में लाकर पूरी तरह परिष्कृत और सुसंस्कृत न कर लिया जाय तो वह समाज-विरोधी प्रवृत्तियां बन जाती हैं और दूसरों को व्यर्थ डराने-धमकाने, रौब गांठने, बात-बात में अपनी शेखी बघारने इत्यादि दुर्गुणों के रूप में प्रकट होती हैं।

चित्तवृत्तियों का उदात्तीकरण एक अबोध (अनकाँशस) क्रिया है, परन्तु इसके लिए चेतन-मन (काँशस) की मदद की जरूरत होती है। ज्ञानपूर्वक हम इन वृत्तियों की दिशा और स्वरूप को बदल सकते हैं, परन्तु इन प्रवृत्तियों के प्रवाह को बांध लगाकर सर्वथा रोक नहीं सकते। इसलिए यह आवश्यक है कि बचपन में इन वृत्तियों को पूरा करने का कोई सुरक्षित मार्ग दे दिया जाय, और धीरे-धीरे अभ्यास द्वारा उनके मार्ग और दिशा को बदलकर उन्हें संयत किया जाय।

मिसाल के तौर पर यदि आप किसी बच्चे को इतना दबा दें कि वह अपने क्रोध और आक्रमणशील वृत्ति को कभी किसी प्रकार प्रकट ही न कर सके, तो सम्भव है कि आप यह समझकर भले ही संतुष्ट हो लें कि आपका बालक 'शिष्टाचार', 'सद्व्यवहार' तथा शराफत का पुतला है, परन्तु आप यह उम्मीद न रखें कि जीवन में वह कभी बहुत आगे बढ़ सकेगा।

ज्ञानपूर्वक वृत्तियों के संयम का मार्ग संकेत द्वारा तथा मिसाल पेश करके शिक्षा देना है। इनका स्थायी प्रभाव बहुत धीरे-धीरे बालक के चित्त पर पड़ता रहता है और उसकी वृत्तियां आप-से-आप परिष्कृत होती जाती हैं।

तीसरे अध्याय का सारांश

१. 'जिज्ञासा' एक अन्त:प्रेरणा है, जो बहुत ही उपयोगी है—इसे दबाना न चाहिए।

२. बालक के भावुकतामय जीवन के लिए खिलौनों का बड़ा ही महत्व है। कलदार खिलौने प्रारम्भ में बहुत उपयोगी नहीं होते और कभी-कभी वे बालक के दिल में डर पैदा करते हैं।

३. जितनी जल्दी हो सके बालक को मां-बाप से अलहदा कमरे में अकेला सोने की आदत डाल दीजिये।

४. संकेत एक प्रभावोत्पादक तरीका है, जो बालक के जीवन को ढालने के लिए बड़ा ही उपयोगी है। आपको संकेत का भली प्रकार इस्तेमाल आना चाहिये।

५. घर में एक और बालक का जन्म पहले बालक पर बुरा प्रभाव

पैदा कर सकता है। ईर्ष्या एक बड़ी विनाशकारी भावना है और बहुत आसानी के साथ उठ खड़ी होती है। इसके प्रभाव से बालक की रक्षा करने के लिए आपको अत्यन्त धैर्य से काम लेना चाहिए।

६. चित्तवृत्तियों (इन्स्टिंक्ट्स) का उदात्तीकरण (सब्लिमेशन) शिक्षा का उद्देश्य है। परन्तु बालक की वृत्तियों को दबा देने से यह उद्देश्य पूरा नहीं हो पाता।

७. यदि चित्तवृत्तियों को भली-भांति प्रकट करने और उनके परिष्कार के लिए घर में उपयुक्त परिस्थितियां मौजूद न हों तो बालक को किसी नर्सरी में भेज देना उचित है।

: ४ :

बालक और काम-वृत्ति—शरीर के अंग-प्रत्यंगों के यथोचित नाम—आचार-विचार और शिष्टाचार—टेढ़े-मेढ़े सवाल—हस्त-मैथुन ।

कुछ लोगों को बालक के प्रथम पांच वर्षों पर विचार करते हुए काम-विषयक (सेक्स की) चर्चा उठाना बहुत अजीब-सा मालूम होगा । तथापि इस विषय का बहुत अधिक महत्व है ।

वे सब वेदनाएं और स्वाभाविक अन्तःप्रेरणाएं (इम्पल्सिज़) जो सयानी उम्र में आकर स्त्री-पुरुष के परस्पर आकर्षण का मूल बन जाती हैं, शिशु के जीवन में आरम्भ से ही बीज-रूप में उपस्थित रहती हैं । बच्चों में दूसरों को प्यार करने का उत्साह और दूसरों से प्यार पाने की अभिलाषा प्रारम्भ से ही होती है । केवल प्यार की वृत्ति की दिशा तथा स्वरूप में परिवर्तन हो जाता है, परन्तु मूल वासना उसी प्रकार अखण्ड बनी रहती है । हां, उसमें कुछ और भावनाएं भी आकर मिल जाती हैं ।

काम-विषयक शिक्षा (सेक्स-एजुकेशन) का उद्देश्य यह है कि देह और देह के विविध अंगों के व्यापार के प्रति बालक

के भाव सर्वथा उचित और भावुकता-शून्य हो जायं। यह तभी सम्भव है जब कि माता-पिता और आया आदि के भाव भी वैसे ही हों, और वह शरीर के अंगों और उनके कार्यों का ज़िक्र करते हुए कोई शरम या घबराहट महसूस न करते हों।

जब बालक को शरीर के अंगों के नाम बतलाये जाते हैं (अंगुलियां, कान, नाक, हाथ इत्यादि) तो प्रायः कुछ अंगों के नाम जान-बूझकर नहीं बतलाये जाते। इससे हमें मालूम हुए बगैर बालक के मन पर एक गहरा और अवांछनीय प्रभाव बैठ जाता है। इसलिए बालक को जब शरीर के अंग-प्रत्यंगों के नाम बतलाये जायं तो सब नाम ठीक-ठीक बतलाये जायं। कोई बनावटी नाम बताने की कोशिश न की जाय। बालक के भाव देह के प्रति सर्वथा वास्तविक हों और हमारे बतलाने में कोई संकेत ऐसा न हो जिससे बच्चे के दिल में ऐसा ख्याल उत्पन्न हो कि शरीर में कोई बात रहस्यपूर्ण, गोपनीय अथवा मलिन है।

दैहिक व्यापार के सम्बन्ध में भी जब आप चर्चा करें तब भी सर्वथा भावुकतारहित सात्विक भाव बनाये रखें। बाद में जब बालक को शिष्टाचार और सद्व्यवहार की शिक्षा दी जाय उस समय उसे यह बात सुगमता से समझाई जा सकती है कि ख़ास-ख़ास अंगों और उनके व्यापार के सम्बन्ध में संयम-रहित चर्चा समाज के शिष्टाचार के विपरीत समझी जाती है। परन्तु यहां भी हमें शिष्टाचार (मैनर्स) और नैतिकता (मॉरल्स)

दो पृथक्-पृथक् वस्तुओं को आपस में गड़बड़ाकर एक न कर देना चाहिए।

निन्दापूर्ण विशेषणों का (यथा गन्दा, घिनौना, भद्दा इत्यादि), जिनमें एक हद तक नैतिक भर्त्सना का भाव पाया जाता है, प्रयोग उचित नहीं। इन्द्रियों के व्यापार के सम्बन्ध में बालक की स्वाभाविक दिलचस्पी को दबाना उचित नहीं, क्योंकि भविष्य में काम-वृत्ति का जो स्वाभाविक विकास होना है उसमें यह कौतूहल सहायक होता है।

बच्चे नंगे दौड़ने-फिरने में अधिक प्रसन्न और स्वच्छन्दता का अनुभव करते हैं। उन्हें टोकते रहने की बजाय उन्हें ऐसा करते रहने देना चाहिए; बल्कि माँ-बाप को अपने शरीर के अङ्ग भी बच्चों के सामने बहुत ढांपकर और छिपाकर नहीं रखने चाहिएं।

काम-सम्बन्धी टेढ़े प्रश्नों के उत्तर

यदि बच्चे की काम-सम्बन्धी धारणाओं को भटकने से बचाना हो तो उसके स्वाभाविक कौतूहल और इस विषय की जिज्ञासा को यथाशक्ति संतुष्ट करना चाहिए और उसके प्रश्नों के ठीक-ठीक और पूरे-पूरे जवाब देने में कोई झिझक अथवा हिचकिचाहट ज़ाहिर न करनी चाहिए।

अगर आपने हैरान व परेशान हुए बिना बालक के प्रश्नों के उत्तर दे दिये, तो समझ लीजिये आपने बालक की 'काम-सम्बन्धी शिक्षा की समस्या' को हल कर लिया। तब काम-

विषयक बातों का उसके जीवन में उतना-भर महत्व रह जाता है जितना दूसरी अनेक मामूली-मामूली बातों का। उसमें कोई राजदारी या गोपनीयता तथा रोक-टोक और खौफ नहीं रह जाता। बालक को बनावटी लम्बी-चौड़ी कहानियां सुनाकर टालने या गुमराह करने की कोशिश का परिणाम यह होता है कि वह जो इस दुनिया को अपनी असली शक्ल में पहचानने और समझने की कोशिश कर रहा था, उसके मार्ग में हमने अटकाव पैदा कर दिया। कभी-न-कभी जब उसे असलियत का ज्ञान होगा तब अपने माता-पिता और शिक्षक पर से उसका विश्वास बुरी तरह हिल जायगा, जिसका परिणाम बहुत ही भयंकर निकल सकता है।

सब प्रश्नों के उत्तर ईमानदारी और सचाई के साथ देने चाहिएं ताकि जितनी बात बच्चा पूछता है उतनी का उत्तर उसे पूरा-पूरा मिल जाय। कोई कारण नहीं कि बिल्ली के बच्चों और कुत्ते के पिल्लों की उत्पत्ति का रहस्य उसे क्यों न समझा दिया जाय, और इस रहस्य का भी उतना ही बेखटके क्यों न जिक्र किया जाय जितना कि मुर्ग़ियों के अंडे देने का।

जब बालक मोटरकार अथवा सूर्य या चन्द्र-ग्रहण के सम्बन्ध में प्रश्न करता है तो हम इसे भली-भांति समझाने में कोई असाधारण घबराहट अनुभव नहीं करते। परन्तु क्या यह अजीब बात नहीं कि जब अपनी उत्पत्ति और अपने शरीर के व्यापार-सम्बन्धी प्रश्न करे, जो प्रश्न उसके अपने लिए

भी बड़े महत्वपूर्ण हैं, तो हम उसे इस विषय में डांट-डपटकर चुप करा दें।

इस साधारण-सी भूल से मां-बाप और शिक्षक एक सीधी-सी बात को जटिल समस्या बना लेते हैं। इसका मूल कारण तो यह है कि बहुत कम आदमी अब तक इस तर्क-हीन धारणा से अपना पिंड छुड़ा सके हैं कि काम-वासना की तृप्ति में अवश्य कोई अनौचित्य और अपराध है। यदि आप कोई ऐसी तरकीब निकाल सकें कि आपके बच्चे अपनी देह के उपयोग के विषय में इस अपराधीपन के भाव से छुटकारा पा जायं तो आप बच्चों को न केवल अधिक सुखी बनायंगे बल्कि स्वस्थ भी।

हस्त-मैथुन और सूनापन

जब बच्चा अपने ही अंगों से कुछ आत्म-सन्तोष पाने की चेष्टा करता दिखाई दे, चाहे वह अंगूठा चूसने में मग्न हो, अथवा उसकी अंगुलियां अपनी जननेन्द्रिय से खेल रही हों, तो यह अवसर उस पर नैतिक गिरावट का सन्देह करने और उसके लिए उसकी भर्त्सना करने का नहीं है। यह वस्तुतः इस बात का चिह्न है कि बालक की तबियत ऊबी हुई है, और वह दिल-बहलाव की सामग्री की तलाश में है। उसकी दिक्कत यह है कि बाहर उसे दिल-बहलाव की और कोई सामग्री नहीं मिल रही है। यह भी सम्भव है कि उसे मृदुलता और स्नेह का अभाव खटक रहा है और सन्तोष प्राप्त करने

के लिए वह अपने ही शरीर को साधन बना रहा है।

यदि आप अपने बालक को स्वतन्त्र और स्वावलम्बी बनाना चाहते हैं तो यह कभी न भूलिए कि बालक को मृदुलता और स्नेह की बचपन के प्रारम्भिक वर्षों में बहुत अधिक आवश्यकता है। यद्यपि आपका बालक अकेला ही अंधेरे कमरे में सोता है, परन्तु आपके लिए यह लाज़मी है कि सोने के लिए निर्जन कमरे में छोड़ते हुए उसे यह यकीन करा देने से कभी न चूकें कि आपका स्नेह उस पर निरन्तर बना हुआ है और उस जगह अकेला होने पर भी वह पूरी तरह आपकी हिफ़ाज़त में है।

लड़कपन और किशोरावस्था में किसी हद तक हस्त-मैथुन तो लड़के और लड़कियों में स्वाभाविक होता है, और उसके लिए उतना ही संकेत दे देना पर्याप्त होता है कि 'अपने हाथों से यह लड़कपन की कुचेष्टा न करके कोई बेहतर काम करो तो क्या ही अच्छा हो।'

जब आदत ज्यादा सवार हो जाय तो समझ लीजिए कि बालक में अपराध का भाव बहुत जबर्दस्त हो गया है और भय इतना बढ़ गया है जो मन में सदा उपस्थित रहता है। और यह भी स्मरण रखिये कि बालक का मन जिस चीज से डरता है उधर उसका ध्यान बार-बार खिंच जाता है।

शैशव-काल और बचपन में हस्त-मैथुन की आदत को कम किया जा सकता है, यदि बालक को दिल-बहलाव का काफी

सामान दे दिया जाय और उसे यकीन करा दिया जाय कि मां-बाप का स्नेह उस पर निरन्तर बना रहेगा।

चौथे अध्याय का सारांश

१. काम-वृत्ति को जाग्रत करने वाली अन्तःप्रेरणाएं जन्म के साथ ही बच्चे में मौजूद होती हैं। अपने बच्चों के अन्दर काम-वृत्ति या काम-वासना का विचार करके आप घबरा न जायं।

२. काम-शिक्षा (सेक्स एजुकेशन) कोई समस्या नहीं है। काम शैशव काल में ही आरम्भ हो जाता है और निरन्तर इस शिक्षा में उन्नति होती जाती है।

३. अपने बालक के प्रश्नों का भली-भांति और सचाई के साथ उत्तर दीजिए।

४. आप जैसे मोटरकार की रचना और कार्य-शैली समझाते हैं, शरीर के विविध अंगों की रचना और कार्य-शैली भी आप उसी अविकृत भाव से क्यों नहीं समझा सकते?

५. यदि आपका बालक बुरी आदतों का शिकार हो रहा हो तो घबरा न उठिए, सिर्फ इस बात का इन्तजाम कीजिए कि आपके बालक की तबियत ऊबने न पाए।

: ५ :

सामान्य सिद्धान्त—कपड़े पहनाना और दूसरों के यहां मेल-मुलाकात के लिए जाना—बालकों की उपस्थिति में उनके ही सम्बन्ध में बातें करना—नियन्त्रण और सजा—अंत में आपका बालक कैसा बन गया।

प्रौढ़ लोग छोटे बच्चों की जिन्दगी को बहुत आसानी के साथ एक मुसीबत-सी बना सकते हैं। बच्चे के लिए वह समय कितनी सख्त आजमाइश का होता है जब आपके साथ उसे आपके किसी दोस्त रिश्तेदार के यहां मेल-मुलाकात के लिए जाना पड़े। बच्चा अपने किसी दिलचस्प खेल या किसी काम में सर्वथा मग्न होता है, जब अकस्मात् उसे आपका हुक्म हुआ और आपने उसका सब काम सहसा ज़बर्दस्ती छुड़ा दिया। अब बच्चे की मां ने उसके मुंह, सिर, नाक, हाथ, पैरों को रगड़-घिसकर उसे जल्दी-जल्दी सजाया-संवारा। उस अवसर पर उसे ज्यादा कसे हुए चुस्त कपड़े पहनाये जाते हैं, जिन्हें हमेशा पहनने का उसे अभ्यास नहीं है, और जो उसे बहुत तकलीफदेह मालूम हो रहे हैं। तिस पर उसे सख्त ताकीद की जाती है कि कहीं इन कपड़ों को गन्दा न करे। इस तरह उसे साज-संवार कर घर के एक

कोने अथवा तंग गाड़ी में ठेल दिया जाता है और कोई आध घंटा चुपचाप इन्तजार कराया जाता है, ताकि इस बीच में घर के सब लोग सज-धजकर तैयार हो लें।

अच्छा उसूल तो यह है कि जब सब लोग तैयार हो लें तो सबके पीछे बच्चे को तैयार किया जाय, ताकि खेल से छुड़ाने के बाद बाहर जाने तक उसे विशेष इन्तजार न करना पड़े। अन्यथा बालक के मन पर उस दिन की भेंट मुलाकात का स्थायी असर रह जायगा कि वह ऐसे अवसरों की गणना थकाने वाले और बेलुत्फ कामों में करने लगेगा और इसलिए जब कभी प्रौढ़ लोगों की चहल-पहल में हिस्सा लेने के लिए उसे कहा जायगा, वह उसे नापसन्द करेगा।

सैर करते वक्त आपने बहुत दफा ऐसा नजारा देखा होगा कि कोई थका-हारा मुसीबत का मारा लाचार बच्चा मां का पल्ला खींचता हुआ उसके पीछे-पीछे दीन दयनीय दशा में घिसटता जा रहा है, अथवा बच्चेगाड़ी में बैठा-बैठा ठुनकता और बिलबिलाता हुआ चला जा रहा है और मां बच्चे की तरफ से बेपरवाह होकर अपनी किसी सहेली के साथ गप्प लड़ाती हुई चली जा रही है।

यदि मां अपनी सहेली से बच्चे के विषय में चर्चा कर रही है, बच्चे की बोल-चाल, उसके दिलचस्प व्यवहार इत्यादि का जिक्र चल रहा है तब तो मामला और भी ज्यादा खराब है, क्योंकि अपने सम्बन्ध में मां के मुंह से चर्चा सुनकर

वह अपने बारे में एक राय कायम कर लेगा। जब बालक अपनी विचित्र बाल-चेष्टाओं पर सयाने लोगों को हंसते देखता है तो कई बार शरमा जाता है, और इससे उसके मनमें अपने सम्बन्ध में हीन-भाव (इन्फीरिआरिटी कांप्लैक्स) बैठ जाता है। अथवा बालक दूसरी सीमा पर चला जाता है। जिन-जिन बातों में सयाने लोग ज्यादा दिलचस्पी लेते हैं, हंसते और खुश होते हैं उन्हें वह बार-बार दुहराकर अपनी दिखावट करता है, और फिर अपने से बड़ों को खुश करने का यही आसान तरीका पकड़ लेता है। नई-नई बातें सीखकर उनको खुश करने की कोई कोशिश नहीं करता।

इसलिए बच्चे के सामने आपस में उसकी चर्चा कभी न कीजिए, जब तक इस चर्चा का उद्देश्य बच्चे को संकेत द्वारा शिक्षा देना न हो। 'श्यामू मुझे एक मिनट के लिए भी तंग नहीं करता। समय पर चुपचाप बिस्तर पर जाकर लेट जाता है, और रात-भर मीठी नींद सोया रहता है'—यह कथन यद्यपि पूर्णतया सत्य न हो, परन्तु श्यामू को सुनाकर उसकी तारीफ के ये शब्द आप अपने किसी दोस्त से इस ढंग से कहेंगे मानो आपके इल्म में श्यामू उन्हें सुन नहीं रहा, तो इन शब्दों में संकेत द्वारा शिक्षा का पूरा-पूरा बल उपस्थित हो जायगा; और वह मन-ही-मन आपके कथन पर विचार करके आपकी शिक्षा को ग्रहण कर लेगा। परन्तु यदि श्यामू आपके मुंह से यह शब्द सुन लेगा—'श्यामू बड़ा नटखट लड़का है, और

रात-भर दिक किया करता है', तो इसके बाद श्यामू के सुधरने की बहुत कम आशा रखिए।

नियन्त्रण स्वाभाविक होना चाहिए

नियन्त्रण का सवाल काफी मतभेद और विवाद का विषय बना हुआ है। यह तो बहुत जरूरी है कि बालक की दिनचर्या भली-भाँति नियम और व्यवस्था से चलती रहे, और वह सोने, जागने, खाना खाने इत्यादि में पूरी तरह वक्त की पाबन्दी करना सीखता चला जाय। परन्तु इस विषय में हमें बिलकुल नियम का गुलाम और सनकी भी न बन जाना चाहिए। आदत और अभ्यास के बारे में यह भी जरूरी है कि मौका आ पड़ने पर उसे बेखटके तोड़ा या बदला भी जा सके।

दिन-भर की खेल-कूद के बाद सांझ के वक्त बिछौने पर जाना बच्चे के लिए एक हर्ष और आह्लाद का अवसर होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब बालक को उस वक्त मां-बाप का विशेष प्यार मिले, और वह अपने-आपको उनकी पूरी हिफाजत में समझकर निर्भय हो सके। इसलिए बच्चे को कभी यों ही जबर्दस्ती बिछौने पर ठेल न देना चाहिए कि उसे एक आफत-सी महसूस हो।

उसी नियन्त्रण की कोई कीमत है जिसकी प्रेरणा बालक के भीतर से हो। बाहर से ठूंसा हुआ नियन्त्रण निरर्थक होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि फलां काम वह करेगा

और फलां काम वह कभी न करेगा, इस प्रकार एक स्टैंडर्ड-सा बन जाने के बाद उसे न कोई ताकत बाहर से मजबूर करती है, और न बाहर से कोई सजा का डर उसे किसी काम से रोकता ही है।

इसलिए कायदे कम-से-कम बनाने चाहिएं। जो कायदे बनाये जायं वह भी बालक के हित की दृष्टि से ही बनाये जाने चाहिएं, न कि सयाने लोगों की सहूलियत के ख्याल से। बालक से शुरू-शुरू में यह आशा तो की ही नहीं जा सकती कि वह शराफत के उस मापदण्ड पर चल सकेगा जो बड़े-बूढ़ों के लिए बना हुआ है। वह देखा-देखी धीरे-धीरे अनुकरण और अभ्यास करता हुआ उन तौर-तरीकों को सीखता तो जायगा, परन्तु उस पर शिष्टाचार और सद्व्यवहार के किसी पैमाने को ठूंसना और उस पर चलने के लिए विवश करना व्यर्थ और हानिकारक है।

इसीलिए इस बारे में बहुत जोर देने की जरूरत है कि उसी नियन्त्रण का कोई लाभ है जिसकी प्रेरणा भीतर से मिलती है। बाहर से ठूंसा हुआ नियन्त्रण किसी भी काम का नहीं। इसी तरह, सजा की शक्ल ऐसी होनी चाहिए जो बालक को अपनी कुचेष्टाओं का स्वाभाविक और अवश्यम्भावी परिणाम-मात्र प्रतीत हो। और यदि जान-बूझकर कोई सजा दी जाय तो उसके लिए कोई ऐसी ही वजह होनी चाहिए जिसे बालक भली-भाँति समझ सकता हो।

सजा और जिम्मेवारी

ऐसा कभी न होना चाहिए कि आप किसी बात के लिए एक वक्त तो कड़ी सजा दे डालें, और किसी और वक्त उसी बात के लिए उसे कुछ कहें ही नहीं। चांटे या बेंत मारना अगर कभी जरूरी हो ही जाय, तो बहुत ही कम अवसरों पर ऐसा करना चाहिए। इसकी कभी-कभी जरूरत पड़ सकती है जब बालक को फौरन ही ठीक रास्ते पर लाना हो, जैसे जब बालक दूसरे बच्चों को मारता-पीटता हो। ऐसे अपराधों के लिए शारीरिक दण्ड देकर बालक को आप यह महसूस करा सकते हैं कि जब उसे मारा-पीटा जाय तो उसे कैसा लगता है।

प्रायः लोग सजा और नियन्त्रण के प्रश्न पर बहुत ही परेशान हो उठते हैं। हर कोई अपने व्यक्तित्व को प्रकट करने के लिए किस प्रकार उत्सुक रहता है, और यदि उसे इसका अवसर न दिया जाय और उसकी इस वृत्ति को बिलकुल कुचलकर रख दिया जाय, तो इससे कैसी-कैसी बुराइयां उत्पन्न होती हैं, इस विषय में उन्होंने बहुत-कुछ सुन रखा होता है, और उन्हें इस बात का डर बना रहता है कि कहीं उनकी अपनी गलतियों की वजह से बच्चे के चरित्र पर बुरा प्रभाव न पड़े।

यह खतरा बिलकुल निराधार नहीं है। परन्तु समझदार मां-बाप को डरने और घबराने की कोई जरूरत नहीं है।

सामान्य व्यवहार-बुद्धि, स्वाभाविक समझ-बूझ और हर बात को बच्चे के दृष्टिकोण से देखने की भरसक कोशिश इस विषय में जितनी अधिक सहायक होती है उतना जरूरत से ज्यादा विज्ञान का अनुयायी बनने का प्रयत्न नहीं। आप जो नियम बनावें वे केवल बच्चे के लाभ को दृष्टि में रखकर बनावें, न कि सयाने लोगों को परेशानी और चिन्ता से बचाने की खातिर।

परन्तु इसके विपरीत बालक को उसके चाल-चलन के सम्बन्ध में जिम्मेदारी के बोझ से बुरी तरह लाद देना भी ठीक नहीं है। नहाना, खाना, सोना तो बच्चे के मामूली नित्य-नियम बन जाने चाहिएं, और इन्हें करते हुए बालक को पूरी तरह बेफिक्री और हिफाजत का विश्वास होना चाहिए। परन्तु अगर आप उससे यह आशा करें कि बाग में खेलते वक्त भी वह अपने-आपको साफ-सुथरा रखे तो ऐसी आशा करना फिजूल है।

बच्चे के कपड़े ऐसे होने चाहिएं जो हर मौके के मुताबिक हों। बच्चे की अवस्था उस समय कितनी दयनीय और करुणा-जनक होती है जब उसे धमकाकर एक कोने में बिठा दिया जाता है, नटखटपन से बाज रहने की ताकीद की जाती है, और बच्चा चुपचाप डरते-डरते वहीं अपनी अंगुलियों से कुछ खेलकर दिल बहलाने की चेष्टा कर रहा होता है। बाल-जीवन का उद्देश्य एक ही है कि नित्य नये तजुर्बे किये जायं। इस

उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे खेल और उछल-कूद की खुली छुट्टी होनी चाहिए।

अपने भावावेशों को काबू में रखिए

बालक के साथ सलूक करते वक्त जहां अक्लमंद माता-पिता कुशल व्यवहार-बुद्धि का परिचय देते हैं वहां अपने मिजाज और तबियत पर भी हमेशा नजर रखते हैं। अगर आपकी तबियत में किसी वक्त चिड़चिड़ापन है, और जब सरकारी टैक्स लेने वाला आपसे बार-बार तकाजा करता है, धोबी कपड़े देर से धोकर लाता है, अथवा घर का नौकर आपके बुलाने पर आने में देर कर देता है, उन दशाओं में आपकी तबियत का पारा बेतहाशा ऊंचा चढ़ जाता है, और आप गालियों की बौछार लगा देते हैं, घर में एक तूफ़ान खड़ा कर देते हैं, तो यह बिलकुल स्वाभाविक है कि आपके बच्चे की तबियत पर भी इसका स्थायी असर पड़ जाय। इसलिए इस विषय में आपको बहुत ही सावधान रहना चाहिए और कम-से-कम बच्चों के सामने अपने भावावेशों को यत्न-पूर्वक काबू में रखना चाहिए। यह बहुत ही कठिन कार्य है, पर है निहायत जरूरी। प्रायः शिकायत की जाती है कि बच्चे आजकल बहुत 'गुस्ताख' होते जाते हैं, लेकिन हम भूल जाते हैं कि वह बोल-चाल और व्यवहार में अपने से बड़ों का अनुकरण कर रहे होते हैं। परन्तु ऐसे कितने लोग हैं जो बच्चे के आइने में अपना स्वरूप देखकर भी अपनी भूलों को समझने

और सुधारने के लिए तैयार होते हैं ?

मां-बाप प्रायः भूल जाते हैं कि उनके बच्चे उन्हें उस दशा में देखने का कम ही अवसर पाते हैं जब वह परस्पर प्यार और स्नेह में डूबे हुए शराफत और भलमनसाहत की मूर्ति बने बैठे होते हैं। प्यार करने की दशा में वह बच्चों से अलहदा होते हैं। परन्तु बच्चों की निगाह में जब तक वे रहते हैं, आपस में एक दूसरे के साथ व्यंग और गुस्से में तकरार करते नजर आते हैं, गर्मा-गर्म बहस में उलझे हुए होते हैं अथवा लोगों से बात-बात पर बिगड़ते दिखाई देते हैं। सम्भव है कि यह सब उनके विवाहित जीवन की ऊपरली सतह पर ही हो और वैसे उनके परस्पर सम्बन्ध बहुत ही स्नेहपूर्ण हों, परन्तु बच्चे जितना कुछ देख पाते हैं वह उनके चरित्र के लिए एक खतरनाक नमूना होता है। एक तो वह लड़ाई-झगड़े से यों ही डर जाते हैं, दूसरे मां-बाप के विवाहित जीवन का नक्शा देखकर वह उसीके आधार पर जरा बड़े होने पर अपने विवाहित जीवन की कल्पना मन में बिठा लेते हैं। इस कल्पना का उनके जीवन पर स्थायी प्रभाव होता है।

आप बच्चों के सामने विवाहित जीवन का जो नमूना पेश करते हैं उस पर बहुत-कुछ इस बात का दारोमदार है कि आपके बालक और बालिका बड़े होकर सुखी विवाहित जीवन बितायंगे अथवा कलह-क्लेश करेंगे, यद्यपि यह ठीक है कि इसमें कुछ और महत्वपूर्ण बातों का प्रभाव भी पड़ता है।

जब बालक घर की चहारदीवारी से निकलकर स्कूल की जरा बड़ी दुनिया में प्रवेश करने लगता है तो उसे कुछ नये अनुभव होते हैं, जिनके विषय में माता-पिता को कुछ ज्ञान नहीं होता। समझदार माता-पिता इस अवसर पर बड़ी होशियारी और समझदारी से काम लेते हैं और इस बात का भलीभांति ख्याल रखते हैं कि बालक के मन पर नई परिस्थिति का अच्छा ही प्रभाव पड़े। वह इस बारे में तसल्ली कर लेते हैं कि बालक के चरित्र-निर्माण की आधार-शिला ठीक तरीके से रखी गई है, और जिन्दगी के प्रति बच्चे के भाव बिलकुल ठीक-ठाक हैं।

यदि बालक के साथ उचित रीति से सब बर्ताव हुआ हो तो वह किस नमूने का होगा ?

आधुनिक बच्चा

यह यकीनी बात है कि आजकल के बालक को देखकर पुराने जमाने के बड़े-बूढ़े चौंककर दांतों-तले अंगुलियां देने लगेंगे। बीते जमाने में लोग 'सब कुछ ठीक है' मानकर अपने-आपसे पूर्ण संतुष्ट थे। तब बच्चों का लालन-पालन और शिक्षण किस रीति से होता था ? कोई बड़ी बुढ़िया आपको अपने -तजुर्बे सुनाकर बतायगी, और कहेगी, 'ओह! उस वक्त के बच्चे कितने भले और सुशील होते थे।' मौसी भागदेवी आपको जब यह सब सुना चुकेगी तो चचा गणेश कसम खाकर कहेंगे कि आपका लड़का बड़ा ही शरीर और काबू से बाहर हुआ जा रहा है और

बूढ़ी दादी अपनी कांपती हुई आवाज में आप पर रोष प्रकट करके कहेंगी कि सारा कसूर तो आपका है। अगर आपने उसकी नसीहत पर कान दिया होता तो बच्चा क्यों बिगड़ता ? बात यह है कि इन बुजुर्गों को अपने वक्त में यह सिखाया जाता था कि बालक को उसकी बाहर की हरकतों से जांचो। लेकिन परख का यह पैमाना ठीक नहीं। इन आदरणीय बुजुर्गों की नजरों में भली-भांति सिखाया-पढ़ाया हुआ बच्चा वह है जो अपनी छोटी-सी उम्र में ही इन सुसभ्य और शिष्ट बुजुर्गों की हू-ब-हू छोटी-सी तसवीर हो—बच्चा बिलकुल साफ-सुथरा, चुप साधा हुआ, शर्म, शील, नम्रता का पुतला, चौके या खाने की मेज के तमाम तकल्लुफ और शिष्टाचार के नियमों का ऐसा पाबन्द हो कि आपको कहीं टोकने की जरूरत न पड़े। बस, यह नमूना वह पसन्द करेंगे।

हमारा पांच साल का बच्चा इस परीक्षा में कभी पूरा नहीं उतरेगा। उसमें उपर्युक्त प्रकार के कोई भी गुण नहीं होंगे। फिर भी वह उपर्युक्त प्रकार के बालक से बेहतर होगा। आप देखेंगे कि उसके सब काम आप-से-आप और अत्यन्त स्वाभाविक रीति से सम्पन्न होते हैं। उसकी हर चेष्टा में आपको उसकी अपनी सूझ-बूझ और प्रेरणा तथा उत्साह नजर आयगा। आपकी बैठक में अपनी मां की अंगुली पकड़े-पकड़े प्रवेश करके वह गुम-सुम एक तरफ दुबककर न बैठ जायगा, और न आपके सवालों का जवाब शरमाकर केवल 'हां' या 'न' में देता चला जायगा। वह बेखटके आपके कमरे में चला आयगा, और वहां

जो भी कोई बैठा होगा उसके साथ बिना किसी झिझक के खुली तरह बात करता रहेगा। उसमें आप हर बात की जिज्ञासा और कुछ-न-कुछ करने की लालसा देख पायंगे।

खाना खाते समय उसके व्यवहार में आप कुछ नुक्स अवश्य निकाल सकेंगे। भोजनशाला के शिष्टाचार का सुसभ्य समाज में अपना स्थान है, परन्तु उस पर जरूरत से ज्यादा जोर न देना चाहिए। उपदेश से ज्यादा आसरा लीजिए, और यदि आपका बालक जानता है कि उसे कब कैसा व्यवहार करना है तो इस बात की चिन्ता न कीजिए कि वह सदा व्यवहार के आदर्श पर पूरा ही उतरे।

बच्चों और प्रौढ़ लोगों के अधिकार

जिस बालक का लालन-पालन उचित रीति से हुआ हो, कोई वजह नहीं कि वह आपके लिए किसी भांति भी दुःखदायी साबित हो। बालक का अपना व्यक्तित्व है और उस व्यक्तित्व को जतलाने का उसे पूरा अधिकार है। परन्तु यदि उसने आत्म-सम्मान का भाव ग्रहण कर लिया है तो उसे यह समझाने में दिक्कत न होगी कि दूसरों के इस अधिकार का भी उसे पूरा-पूरा सम्मान करना चाहिए। इस बात का यदि ध्यान रखा जाय कि बालक को बिलकुल अकेले खेलने का अवसर मिले, जहां उसका निरीक्षण और नियन्त्रण करने वाला कोई व्यक्ति न हो, तो बालक भी मां-बाप को, जब वह किसी काम में ज्यादा संलग्न होंगे, अकेला छोड़ देगा और उनके एकान्त को भंग न करेगा।

वह उनके इस अधिकार को स्वीकार करेगा।

बच्चे के खिलौनों और उसकी फर्जी चीजों की कद्र करते हुए यदि आप उसी भांति व्यवहार करें मानो ये वस्तुएं उसकी कीमती सम्पत्ति हैं, तो वह भी बड़ों के उपयोग की वस्तुओं की कद्र करना सीख जाता है, और उन्हें बिगाड़ता नहीं। यदि घर में इतनी जगह न हो कि बालक और प्रौढ़ दोनों ही अपनी-अपनी दुनिया साथ-साथ बसा सकें, और दोनों में जगह के लिए तकरार होती हो, तो घर के प्रौढ़ लोगों को तंगी उठानी चाहिए, और बच्चे के लिए उन्हें जगह की तकलीफ अपने ऊपर झेल लेनी चाहिए—लेकिन बच्चे को मुश्किल न पड़नी चाहिए।

इसमें अवश्य कठिनाई और तंगी तो महसूस होगी, परन्तु जिन्दगी को आगे बढ़ाना है, और हमारे बच्चों को ही हमारे बाद जिन्दगी की मशाल को जिन्दगी की दौड़ में अगली मंजिल पर पहुँचाना है।

पाँचवें अध्याय का सारांश

1. जब आपको कहीं मेल-मुलाकात के लिए जाना हो तो बच्चे को सबसे पहले तैयार करके बाद म इन्तजार मत कराते रहिए। पहले आप तैयार हो लीजिए और फिर बच्चे को तैयार कीजिए।
२. आप के बच्चे आपके साथ चल रहे हों, और आप अपने दोस्तों-मित्रों के साथ गप्पें लड़ाते जा रहे हों, यह ठीक नहीं है। ऐसे वक्त सोचिए कि आपके लिए यह गप्पबाजी भले ही दिल-बहलाव का साधन हो, परन्तु आपके बच्चों को उन बातों में कोई दिलचस्पी नहीं है।

वे इस तरह की सैर की उकता जायंगे ।

३. बच्चे की उपस्थिति में उसके सम्बन्ध में कोई बातचीत न कीजिए।

४. आपके घर के सब नियम बच्चे की सुविधा के अनुकूल होने चाहिएं, आपके आराम के ख्याल से नहीं।

५. अपनी तबियत पर काबू रखिए। कल आप बच्चे के जिस व्यवहार पर हँस दिये थे, आज उसी तरह के व्यवहार पर आपका उसे डांटना-फटकारना कितना अनुचित है। इससे बच्चा भौंचक्का-सा रह जाता है और सहम जाता है।

६. हर समय बच्चे से लोकाचार के नियमों के पूर्ण पालन की आशा न कीजिए। इतना काफी है कि आपके बालक को मालूम हो कि मुनासिब बात क्या है। उस बालक की अपेक्षा, जिसके व्यवहार में देखने में तो नुक्स नहीं लेकिन यूं बनावट है, वह बालक ज्यादा अच्छा है जो स्वाभाविक रीति से खुद-बखुद काम करता है।

: ६ :

ऊधमी बालक—झुंझला उठने वाली तबियत—ईर्ष्या—झूठ बोलने की आदत—परियों की कहानियां—धर्म-शिक्षा का प्रश्न।

हम ऊपर कह आये हैं कि घर के कायदे-कानून सब बच्चे के फायदे के लिहाज़ से होने चाहिएं, न कि प्रौढ़ पुरुषों की सहूलियत के लिए। हम ऊपर जो कुछ लिख आये हैं उससे यह भी साफ़ होगया होगा कि 'नटखट' बच्चे अपनी परिस्थितियों का ही परिणाम होते हैं।

अगर इस बात का कारण जानना हो कि श्यामू अथवा रेणुका दोनों बच्चे क्यों आपके लिए इतने दुखदाई और एक आफ़त-सी बन गए हैं, तो माता-पिता को आत्मनिरीक्षण करना चाहिए, और यह जांच करनी चाहिए कि इन बच्चों की बूढ़ी बड़ी अम्मा या मौसी उनसे किस प्रकार का सलूक करती हैं, अथवा और जिन सम्बन्धियों से उन्हें हर रोज वास्ता पड़ता है उनका व्यवहार कैसा रहा है।

प्रशंसा की आवश्यकता

अपने चुस्त और फुर्तीले जीवन में बच्चा हरदम यह चाहता है कि आपका ध्यान उसकी ओर खिंचा रहे और आप जी भर-

कर उसकी तारीफ करते रहें। यदि इस उद्देश्य को वह उचित मार्ग से हासिल नहीं कर सकता तो फिर वह अनुचित तरीकों को काम में लाता है। यदि मुनासिब तरीके से प्रशंसा की जाय तो उसमें शेखी का भाव पैदा नहीं होता। "वाह, वाह ! तुमने यह काम तो खूब कर लिया, इसी तरह रहा तो एक दिन ऐसा आयगा, जब तुम इससे भी अच्छी तरह इसे कर सकोगे,"— तारीफ में यह भाव रहना चाहिए, चाहे जब शिशु आप-से-आप स्टूल पर चढ़ जाय तब, अथवा जब स्कूल जीवन में सफलता लाभ करे तब।

खाने पर नाक-भौं सिकोड़ते रहना यह भी एक तरीका है जो बड़ों का ध्यान अपनी तरफ खींचने और मशहूरी हासिल करने के लिए बच्चे अक्सर अख्तियार किया करते हैं। इसका इलाज यही है कि जब बच्चा खाना खाने से इन्कार करे तो इस बात को बिलकुल ही महत्व न दीजिये, और बगैर कुछ कहे-सुने इस बात को जाने दीजिये। परन्तु यह याद रखिये, आपका कर्तव्य इतने में समाप्त नहीं हो जाता। आपको अभी जांच करनी है कि बालक के खाना खाने से इन्कार करने का असल कारण क्या है, और उसकी अहम्मन्यता को किस बात से ठेस पहुँची है, जिसने उसे इस टेढ़े-मेढ़े तरीके से अपने व्यक्तित्व को जतलाने के लिए मजबूर किया है।

जैसा कि हम पहले भी कह आये हैं कि जब घर में और बच्चा पैदा हो जाय तो प्रायः ऐसा होता है कि पहला बच्चा,

जो पहले हंसता, खेलता और खुश रहा करता था, और हर तरह से ठीक चल रहा था, एकदम लड़कपन की बातें करने लगता है, और ऐसा आचरण करता है मानो अभी छोटी उम्र का शिशु ही हो। वह अपनी सब पहली शिक्षा और अभ्यास भूल-सा जाता है। बात-बात पर झुंझला उठना, बिछौने पर पेशाब कर देना और कपड़े गन्दे कर लेना इत्यादि बातों से मां-बाप का सारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेना चाहता है, जो ध्यान वह इस समय नवजात शिशु पर इतनी उदारता के साथ खर्च कर रहे होते हैं।

अर्थात्, अब आपका बालक जिन्दगी की दौड़ में आगे बढ़ने की बजाय पीछे को लौट पड़ा है। 'मैं भी तो शिशु हूँ, मैं भी आपके स्नेह और आपकी परवाह का हकदार हूँ'—यह बात बालक अपने अद्भुत व्यवहार के द्वारा आपसे कहना चाहता है। ऐसे अवसर पर बालक के साथ बिगड़िये नहीं। नवजात शिशु से जरा समय बचाकर इसके साथ भी स्नेह कीजिए और इसे यकीन दिला दीजिए कि उसने आपका प्रेम गंवाया नहीं है। सबसे बड़ी बात यह है कि उपर्युक्त असाधु व्यवहार के लिए उसकी डांट-डपट न कीजिए, क्योंकि इससे उसकी ईर्ष्या का आवेग इतना बढ़ जायगा कि वह सहार न सकेगा।

ईर्ष्या की समस्या

ईर्ष्या के कारण जो नटखटपन बच्चे में आ जाता है,

जरूरी नहीं कि वह नवजात शिशु के कारण ही पैदा हो। घर में कोई बच्चा आ जाय, और मां या बाप स्वाभाविक तौर पर उसकी देख-भाल और खातिरबाजी में इतने लग जायं कि उनका सारा ध्यान उसी पर केन्द्रित हो जाय तब भी घर का बच्चा ईर्ष्या से जल जायगा। ऐसे सब अवसरों पर इसका एक ही उपाय है कि बच्चे को यकीन हो जाय कि आप उसे ही अधिक स्नेह करते हैं, और साधारण तौर पर उसकी तारीफ करते हैं, चाहे किन्हीं विशेष अवसरों पर ऐसा न भी दीख पड़ता हो।

'तुम बहुत शरीर लड़के हो! जाओ, मैं तुम्हें प्यार नहीं करता,'—इस प्रकार के वाक्य जितने हानिकारक हैं आप उनका अन्दाजा नहीं लगा सकते।

झूठ बोल देना और मामूली चोरी करना इस उम्र में इतनी स्वाभाविक चेष्टाएँ हैं कि आप इन्हें कोई समस्या समझिये ही नहीं। पांच वर्ष तक—और छः या सात वर्ष तक भी—बच्चा कल्पित क्या है और असल वस्तु क्या है इन दोनों में भली-भांति पहचान कर ही नहीं सकता। इसे पहचान करने में सहायता देनी चाहिए, परन्तु जब कभी वह सचाई से दूर जा रहा हो तो हमेशा यही न समझ बैठना चाहिए कि वह जान-बूझकर आपको गुमराह करने के लिए ऐसा करता है। क्योंकि आप बच्चे को ठीक राह पर लाना चाहते हैं, इसलिए अपने कथन पर ज्यादा ध्यान दीजिए और इस बात का प्रयत्न कीजिए कि

आप बिलकुल यथार्थ बात कहें और उस में रत्ती-भर भी अत्युक्ति न हो। मां-बाप को ज़रा देखने-भालने से मालूम हो जायगा कि वह स्वयं इस विषय में कितने अधिक अपराधी हैं।

दूसरों की वस्तुओं की कद्र करना सिखाना हो तो आपको खुद बच्चे की वस्तुओं की कद्र करनी पड़ेगी। और यह भी न भूलना चाहिए कि और कई प्रकार के असद्-व्यवहारों की तरह चोरी करना भी केवल अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने का एक साधन-मात्र हो सकता है। चोरी करता हुआ बच्चा शायद स्नेह का भूखा हो। प्रायः कई मां-बाप अपने ऊपर तथा बच्चे पर अनावश्यक नियंत्रण ठूंसकर बालक को स्नेह से वञ्चित कर देते हैं।

परियों की कहानियां

कई दफा मुझे ऐसे मां-बाप से मिलने का अवसर हुआ है जो बालक के सम्बन्ध में प्रत्येक बात ठीक-ठीक ही करना चाहते हैं, और उन्हें सन्देह रहता है कि परियों की कहानियां सुनाकर बच्चों की कल्पना-शक्ति को उत्तेजित करना उचित होगा अथवा नहीं।

काल्पनिक कहानियां सुनाना और बात है, और जानबूझ कर जीवन के कुछ तथ्यों को गलत तरीके से बयान करना बिल-कुल दूसरी बात है। मनुष्य के मानसिक विकास में कल्पना-शक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। यह उच्च आदर्श की झांकी करा देती है और उस पर पहुँचने की प्रेरणा इसीसे मिलती है।

जिस बच्चे को वास्तविकता के अतिरिक्त कुछ भी न बतलाया गया हो, जो निरी ठोस घटनाओं और सूखे-सीधे तथ्यों की चक्की पीसता रहा हो वह एक अरसिक, उत्साहहीन और निस्स्वत्व-सा प्राणी बन जायगा।

कल्पना का अभ्यास और उपयोग वास्तविकता को समझने की योग्यता भी बढ़ा देता है। परियों की कहानियों का बच्चे की शिक्षा में अपना ही स्थान है। परन्तु ये कहानियां सुनाते हुए उनका आरम्भ ऐसे वाक्यों से करना चाहिए—'कभी की बात है कि...' 'बहुत ही पुराने जमाने की बात है कि'—इत्यादि।

धर्म-शिक्षा के सम्बन्ध में सावधानी

बचपन के प्रारम्भिक वर्षों में धर्म-शिक्षा का प्रश्न बहुत टेढ़ा है। धार्मिक श्रद्धा रखने वाले मां-बाप की यह इच्छा बहुत ही स्वाभाविक है कि उनका बालक शुरू से ही धर्म की राह अख्तियार करे। परन्तु यदि प्रारम्भ में ही बालक के दिमाग में धार्मिकता भर दी गई तो सम्भव है कि बालक उसके कुछ अंशों पर आवश्यकता से अधिक ध्यान दे, और इसका उसके मन और बुद्धि पर बहुत बुरा असर हो।

सबसे जरूरी बात है कि बालक के दिमाग पर ऐसी पाप-भीरुता सवार न हो जाय कि हर बात में उसे पाप का भय ही सताता रहे। बच्चे इस भय को जल्दी ही पकड़ लेते हैं। आप कितनी ही कोशिश करें, दिन में अनेक बार बच्चे को ऐसा अनुभव होगा कि वह बार-बार गलती करता है। बच्चा अपने-

आपको इतना छोटा ख्याल करता है, और आसपास की दुनिया से उसकी स्वाभाविक अन्तःप्रेरणाएं इतनी भिन्न होती हैं कि अपने-आपको वह रह-रहकर कसूरवार समझने लगता है।

पाप की भावना स्वाभाविक नहीं है, वह दूसरों से ली जाती है, इसी के साथ पाप के पश्चात्ताप के लिए सजा की जरूरत भी देखा-देखी मनुष्य अनुभव करने लगता है।

यदि हम मनोवैज्ञानिक विवेचन करें तो बच्चे के नटखटपन की तह में सजा पाने की एक इच्छा पाई जाती है जो उसके अबोध मन में उपस्थित है। इसका आधार यह धारणा है कि दण्ड लेकर मनुष्य दुनिया के अनुकूल बन जाता है, और बालक तो दुनिया के साथ अपनी अनुकूलता स्थापित करने का निरन्तर उद्योग कर ही रहा होता है। खीझकर मां-बाप कहते हैं—'शरारतें करके तुम खुद वह चीज (दण्ड) मांग रहे हो, जो तुम पाओगे', और वस्तुतः बिना समझे-बूझे वह हालत की बिलकुल ठीक मनोवैज्ञानिक व्याख्या कर रहे होते हैं।

'एक भयानक सत्ता—जो बच्चे के अपने मां-बाप से ज्यादा बड़ी और महान् है—अत्यन्त रहस्यमय है, और प्रतिक्षण बच्चे की हर चेष्टा को देख रही है'—यह धारणा उसे अपनी हीनता और तुच्छता का पहले से भी ज्यादा अनुभव करा देती है। हमेशा हर काम करते वक्त उसे कोई देखता रहता है, यह धारणा भी उसकी घबराहट और परेशानी का कारण बन जाती है।

परमात्मा की धारणा

इसलिए यदि बालक को परमात्मा के सम्बन्ध में कुछ बताना हो तो उसे इस रूप में पेश न करना चाहिए मानो वह कोई बड़ा सिपाही है जो सदा देखता रहता है कि कब कोई कसूर करे और वह गिरफ्तार करे। इसके स्थान पर परमात्मा को सृष्टि के सिरजनहार के रूप में पेश करना चाहिए।

मेरा यह अभिप्राय तो नहीं कि बालक को धर्म-शिक्षा दी ही न जाय—परन्तु कहने का मतलब यह है कि यह शिक्षा मनोवैज्ञानिक ढंग पर, बालक के मनोभावों और समझ-बूझ के अनुकूल ही होनी चाहिए।

प्रार्थना का अभ्यास

धर्म-भाव वाले मां-बाप के बच्चे देखा-देखी शायद परमात्मा का भजन भी करना चाहें। उन्हें इसके लिए प्राथना के घिसे हुए शब्द रटाने की बजाय यह समझा देना काफी है कि प्रार्थना का अभिप्राय इतना ही है कि वह दिन-भर में जितनी भली बातें हुई हैं उनको याद करें, उन पर विचार करें और उनके शुक्रगुजार हों।

यह स्थूल-सा संकेत-मात्र है। बहुत से मां-बाप इसमें काफी सुधार कर लेंगे। यहां उसूल की तरफ इशारा किया गया है। वह धर्म जो व्यक्ति से आत्म-सम्मान छीनकर उस में यह भाव बिठा दे कि वह महापातकी या गुनाहगार है, ऐसा धर्म वा शिक्षा वैज्ञानिक और आध्यात्मिक दृष्टि से निन्दनीय हैं।

धर्म-शास्त्रों की प्रार्थनाओं में कहीं कोई ऐसा भाव नहीं है। और जहां कहीं धर्म-शास्त्र में इसका सन्देह होता है वहां उसका उद्देश्य अपराधीपन की भावना को पक्का करना नहीं, बल्कि मनुष्य को यह बतलाना है कि वह अपने-आपको ही सब कुछ समझकर अपने-आप में ही भूला न रहे।

मां बच्चे के अन्दर कितना ही धर्म-भाव भरने का प्रयत्न क्यों न करे वह धर्म की कद्र करना या उससे घृणा करना मां-बाप के व्यवहार को देखकर सीखता है। निस्वार्थ भाव का जीता-जागता उदाहरण सचाई, भलमनसाहत और सौन्दर्य की निरन्तर व्यावहारिक उपासना बालक के मन को ठीक रास्ते पर डाल देती है। बालक को यह भी विश्वास करा देना चाहिए कि परमात्मा उसकी ओर है। धार्मिक विश्वास बाद में स्वयं दृढ़ होते रहते हैं।

छठे अध्याय का सारांश

१. ऊधमी बालक अपने आस-पास की परिस्थितियों का परिणाम होते हैं।

२. सब बच्चे अपनी प्रशंसा के भूखे होते हैं। यदि उन्हें वह भलमनसाहत से नहीं मिलती तो वह नट-खट बन कर उसे हासिल करने की कोशिश करते हैं।

३. बच्चों को झूठ बोलने अथवा मामूली चोरी करने की आदत तब पड़ जाती है जब बच्चे को ऐसा लगने लगता है कि मां-बाप का स्नेह उस पर निरन्तर कम हो रहा है अथवा वह असुरक्षित दशा में है।

४. परियों की कहानियों का कोई नुकसान नहीं है। दुनिया की घटनाओं के सम्बन्ध में कभी गलत बातें कहकर बच्चे की बुद्धि को गड़बड़ाहट में मत डालिए।

५. धार्मिक शिक्षा देते वक्त मां-बाप को पूरी कोशिश करनी चाहिए कि बालक में यह भाव उत्पन्न न हो जाय कि वह गुनाहगार है। पाप-भीरुता हानिकारक है।

६. बालक के मन में परमात्मा के लिए धारणा सखा-भाव की हो। वह उसे खतरनाक पुलिसमैन न समझता रहे।